मेरी प्रांतसाहबी

१० अगस्त १९७६ की तिथी थी जिस दिन मैंने हवेली असिस्टंट क्लेक्टर का पद संभाला। इससे पहले दो वर्षों का कार्यकाल प्रशिक्षण का था। वे दो वर्ष और अगले दो वर्ष- भारतीय प्रशासनिक सेवा की बसे कनिष्ठ श्रेणी के वर्ष होते हैं और जिम्मेदार अफसर बनने के अच्छे स्कूल का काम भी करते हैं। इस पोस्ट का नाम भी जबरदस्त है- असिस्टंट कलेक्टर या सब डिविजनल ऑफिसर। कहीं सब डिविजनल मॅजिस्ट्रेट भी। लेकिन महाराष्ट्र के ग्रामीण इलाकों में "प्रांतसाहेब" अधिक परिचित संबोधन है। एकेक जिले में तीन या चार असिस्टंट कलेक्टर होते हैं। उनका काम और अधिकार कक्षा कलेक्टर के काम से काफी अलग, काफी सीमित क्षेत्रों में लेकिन वाकई में जमीनी सतह के होते हैं।

ब्रिटिश राज के दिनों से ही पटवारी, मंडल अधिकारी, तहसिलदार, सबडिविजनल ऑफिसर कलेक्टर, कमिश्नर जैसी अधिकारियों की एक सुदृढ शृंखला बनाकर उनके मार्फत जमीन के प्रशासन से संबंधित सारे कार्य निपटायें जाते थे। जमीन से जुड़े व्यवहारों का लेखा जोखा ब्रिटिशों से पहले भी मुगलों के, निजाम के, शिवाजी के और पेशवे कालीन महाराष्ट्र में रख्खा जाता था। इसके लिए जोशी, कुलकर्णी, सरदेशमुख जैसे पद भी नियत थे। भूमि कर उन्हीं के मार्फत वसूला जाता और सरकारी खजाने में जमा होता। बंगाल-बिहार आदि में जमींदार और वसूलने के लिए चौधारियों की प्रथा थी। लेकिन ब्रिटिश राज की यह खासियत मानी जायगी कि उन्होंने जमीन और प्रशासन से जुड़े सभी कामों को इस एक ही पोस्ट में एकत्रित कर दिया। चाहे जमीन की नाप जोत करनी हो, चाहे खसरा-खतौनी के पट्टे बनाने हों, चाहे भूमिकर वसूलना हो, चाहे वसूली गई रकम का हिसाब रखना हो, कभी सूखा पड़ जाए तो भूमिकर या लगान माफ करनी हो, जो नई जमीन कृषि के उपयोग में लाई जाएगी उसकी नाप जोत कर उसकी लगान तय करना हो, चाहे उत्तराधिकार तय करना हो, जमीन से उत्पन्न झगड़े बखेडे निपटाने हों या कभी जमीन के कारण अपराध, दंगे हो रहे हों और उन्हे सख्ती से रोकना हो- सारे कार्य उस एक अधिकारी की- कलेक्टर की कार्य कक्षा में थे जिसे सरकारी खजाने को भरे पूरे रखने की जिम्मेदारी भी सौंपी गई थी। उन दिनों भूमिकर और जंगल संपदा ही सरकारी खजाने की आय का प्रमुख जरिया थे। अतः जिला स्तर पर कलेक्टर ही ब्रिटिश राज का प्रतिनिधि और सर्वेसर्वा होता था। हर वर्ष हाने वाली फसल का हिसाब वही रखता था। जिला ट्रेझरी उसी के अधीन थी। दो विश्वयुद्धों के कारण जब राशन व्यवस्था लागू की तो उसका मुखिया भी कलेक्टर ही था। इसके अलावा हर जिले का हर साल गजेटियर बनाने का काम भी उसी का होता था। जो कलेक्टर अच्छा लिख सकते थे उन्हें प्रशासन के उपयुक्त अच्छी पुस्तकें लिखने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था। दंगे हुए, झगड़े हुए तो उनका सीधा असर लगान वसूली और सरकारी तिजोरी पर पड़ता था। दंगे की रोकथाम सबसे महत्वपूर्ण मानी जाती। इसी से जिला पुलिस अधीक्षक कलेक्टर के अधीन ही होता था और क्रिमिनल प्रोसिजर कोड के कई सेक्शन जिला मॅजिस्ट्रेट की कचहरी में ही चलाए जाते।

.......................X..........................

इन सब कामों में कलेक्टर का बाँया और दहिना- दोनों हाथ होते थे सब डिविजनल ऑफिसर अर्थात प्रांत साहेब! पहले दौर में कलेक्टर और पुलिस अधीक्षक गोरे अफसर हुआ करते थे। लेकिन अधिकांश प्रांत साहेब देशीय लोग होते। धीरे धीरे जब आयसीएस में हिन्दुस्तानी लोग आने लगे तो प्रांतसाहबों को भी कलेक्टर का प्रमोशन दिया जाने लगा। स्वतंत्रता के बाद आईएएस बनी। उसके अफसरों को भी पहले दो वर्ष प्रांतसाहबी में लगाने का रिवाज कायम रहा। कलेक्टर और प्रांतसाहब की जो प्रतिमा जन मानस में बैठी हुई थी, वह भी अधिकतर कायम ही रही। हालाँकि उनके अधिकार और कामों में काफी अंतर भी पड़ा। फिर भी ग्रामीण प्रशासन में उनकी भूमिका आज भी करीब करीब वही है, और उनका रुतबा भी।

इस पहली पोस्टिंग के कारण नए आईएएस अफसर को ग्रामीण इलाकों में भरपूर काम करना पड़ता है, और नींव वहीं है इस बात को सीखने की कि प्रशासन का असर छोटे से छोटे आदमी तक किस रूप में पहुँचता है।

मेरी पूरी पढाई हुई थी बिहार में। केवल गर्मी की छुट्टियों में महाराष्ट्र के अपने छोटे से गाँव धरणगाँव में जाते थे। मेरा महाराष्ट्र - परिचय बस उतना ही था। मेरी आईएएस की परीक्षाएँ चल रही थीं कि शादी तय हुई। इधर रिझल्ट आया, उधर शादी। फिर प्रकाश की पोस्टिंग थी कलकत्ता और मेरी ट्रेनिंग थी मसूरी में- वहाँ आठ महीनों के बाद ऑर्डर आई कि मुझे महाराष्ट्र काडर अलॉट किया गया है। इसका अर्थ हुआ कि मेरी अगली सारी नौकरी महाराष्ट्र में होगी और कभी कभार दिल्ली में। प्रकाश को ट्रान्सफर के लिए दो च्वॉईस थे- पुणे या मुंबई। हमने पुणे में बस जाने का निर्णय लिया।

मसूरी ट्रेनिंग के बाद मुझे अगले एक वर्ष के जिला ट्रेनिंग के लिए औरंगाबाद में पोस्टिंग मिली। इसके एक ही महिने के दौरान हमारे चीफ सेक्रटरी श्री साठें वहाँ आए। मैंने उन्हें अपनी समस्या बताई। नियम था कि जिस डिविजन में ट्रेनिंग हुई उसी में प्रांतसाहबी की पोस्टिंग मिलेगी। अर्थात् प्रकाश के पुणे आने के बावजूद मुझे अगले तीन वर्ष पुणे जाने का मौका नही मिलेगा। श्री साठे ने आश्वासन दिया कि वे कुछ करेंगे।

तब मेरी ही एक बॅचमेट सुषमा को ट्रेनिंग के लिए पुणे पोस्टिंग दी गई थी। एक सप्ताह से पहले ही हम दोनों की अदला बदली की ऑडर मिली और मैं पुणे में हाजिर भी हो गई।

यह वर्क एफिशियंसी मेरे लिए हमेशा रोल मॉडेल के रूप में रही। सुषमा की शादी मध्यप्रदेश के हमारे दूसरे बॅचमेट से तय थी और उसे वहाँ चले जाना था। लेकिन इस बदलाव पर उसने कभी कोई कटुता नही दिखाई। उस जमाने में सभी सिनियर अधिकारी अपने ज्यूनियर्स के साथ बहुत अपनापन रखते थे। औरंगाबाद में तो चूँकि मैं रेस्ट हाऊस में थी तो मेरा नाश्ता, खाना सब कुछ कलेक्टर के घर में ही होता था जो बगल में ही था। आज के अफसरों की बीच यह अपनापन लुप्त सा होता जा रहा है। ध्यान देने की बात है कि पूरे भारत का प्रशासन चलाने के लिए ब्रिटिशों के पास केवल दो तीन हजार आईसीएस अफसर थे। आज भी केवल पांच हजार के करीब हैं। यदि उनमें अपनापन नही हुआ तो प्रशासन भरभरा कर टूट सकता है। इसी लिए उन दिनों हर सिनियर अफसर की जाँच होती कि वह अपने ज्यूनियर्स के लिए कितना अपनापन दिखाते हैं, उनकी शिक्षा दीक्षा में कितनी जिम्मेदारी निभाते हैं। कोई सिनियर ऐसा नही करे तो उसके सिनियर्स उसका काऊन्सेलिंग करते थे।

इस प्रकार मेरे प्रशिक्षण का एक वर्ष और पोस्टिंग के दो वर्ष पुणे में बीते। तब भी मेरा रूतबा प्रांत साहब का ही था। बिहार की तुलना में- और धरणगॉव की तुलना में भी यहाँ सब कुछ अलग था।

....x..

हवेली प्रांतसाहेब की कार्यकक्षा में पुणे शहर के चारों ओर बसी हवेली तहसील, और पुणे के पश्चिमी भाग में भोर, वेल्हा, मुलशी और मावल तहसिल पड़ते थे। इन चारों के वासी मावले कहलाते हैं और शिवाजी के जमाने में इन्होंने जो पराक्रम दिखाए उनका कोई सानी नही। हवेली तहसिल का इलाका जितना वैभव संपन्न था, बाकी चारों तहसीलें उतनी ही विपन्न। पूरा इलाका सह्याद्री के ऊँचे, दुर्गम चट्टानों से बना। ऐसी विपन्नता जिसे मराठी में " अठरा-विश्व-दरिद्री" कहा जाता है। पांचों तहसिल मिलाकर कुल हजार बारह सौ पटवारी, हर गाँव में एक एक पोलिस पाटील, एक कोतवाल(यह पुराने जमाने के सामर्थ्यशाली कोतवाल से अलग होता है) सौ पचास

मंडल अधिकारी, पांच तहसीलदार, उनके और मेरे ऑफिस के हेड क्लर्क, नाझिर क्लर्क(अर्थात अकाऊटेन्ट)- यों कहें कि कुल दो हजार लोगों का एक कुनबा था। उनसे अच्छा काम करवाना, अच्छे काम की शाबासी देना, जरूरत पड़ने पर बुरे काम की सजा, यह देखना कि लोगों से उनका बर्ताव कैसा है, किसान के साथ कितना न्याय या अन्याय करते हैं, लगान वसूली में कोताही, मेरे अपने ऑफिस में कोर्ट की हैसियत से किए जाने वाले काम............. कुल मिलाकर कामों की भरमार! चौबीस घंटे की डयूटी। कहने को छुट्टियाँ थीं- कैजयुअल लीव्ह, अर्न लीव्ह, मेडिकल लीव्ह। लेकिन मेरी सारी छुट्टियाँ हमेशा लॅप्स हो जातीं। रविवार की छुट्टी भी मैं कभी कभार ही लेती। इसके विपरीत प्रकाश का ऑफिस घड़ी पर चलता। सुबह ठीक सात बजे घर से निकलता और शाम के ठीक सवा सात बजे घर वापस- चाहे कोई घड़ी मिला ले। उधर बचपन में पिता प्रोफेसर थे वह भी रिसर्च इन्स्टिटयूट में। सो वहाँ छुट्टियाँ होती थीं। यह मुझे कई वर्षों तक खलता रहा कि मेरे काम में इतनी कम छुट्टियाँ थीं। धीरे धीरे मैंने थोड़ी बहुत छुट्टियाँ लेना सीख लिया। लेकिन प्रांतसाहबी के काल में कोई छुट्टी नहीं। और ड्यूटी भी कितने घंटे की? दिन में केवल चौबीस घंटों की डयूटी। कितनी देर तक काम करना है और कब सारे पेंडिंग कामों के बावजूद "अब बस" कह देना है, यह सीखने में भी मैंने देर लगाई। लेकिन दो बातें सीखीं पूरा करना है और एक यह कि काम हर हालत में अच्छा करना है। इसी से काम कभी बोझ नहीं बना।

खास पुणे शहर मेरी कार्यकक्षा में नही था। वहाँ के लिए अलग तहसिलदार होते थे जो सीधे कलेक्टर को रिपोर्ट करते थे- इसलिए कि पुणे शहर के सारे प्रश्न, सारी समस्याएँ अलग थीं और कलेक्टर को उन्हें तत्काल निपटाना पड़ता था। इससे एक फायदा यह हुआ कि व्ही.आय्.पी. मैनेजमेंट की डयूटी मेरी नही रही और ग्रामीण इलाके में अपना काम करने के लिए मुझे अधिक समय मिला।

हवेली छोड़ दूसरे चारों तहसिल ठेठ ग्रामीण थे। और पहाड़ी भी। इन पर रास्ते भी बनाने हों तो घुमावदार, सँकरें ही रास्ते बन सकते थे। भारी वर्षा का इलाका। पूरा सहयाद्रि के ग्रेनाइटों से भरा- जिन्हें मराठी में कातल कहा जाता है। गरीबी की मार कायम। कहने को यह धान का प्रदेश था- अर्थात् यदि थोड़ी भी अच्छी जमीन हो तो वहाँ धान उगाया जाता था- बाकी अस्सी-नब्बे प्रतिशन जमीन पर नाचणी नामक एक मोटा अनाज (आजकल इसके पापड़ काफी प्रसिद्ध हो गये हैं क्योंकि डायाबिटिस के लिए अच्छे माने जाते हैं) या करौंदे या घास! धान की अत्यन्त सुगंधी और स्वादिष्ट प्रजाति आंबेमोहोर यहाँ उगाई जाती है। मेरा मानना है कि बिहार में पकने वाली धान की प्रजाति गमरी, और मावली तहसिलों की आंबेमोहोर स्वाद व सुगंधी में बासमती को भी मात दे सकती है- लेकिन बासमती की ये खूबी उनमें नही है कि पकने पर भी सारे दाने अलग अलग रहें।

लोनावला और खंडाला जो महाराष्ट्र के प्रसिद्ध टूरिस्ट केंद्र हैं, मावल तहसिल में पडते हैं। पुणे- लोनावाला- मुंबई दो सदियों से राजमार्ग है। इसी हायवे पर एक व्यापारी गॉव हैं कामशेत जहाँ लाखों टन आंबेमोहोर धान का व्यापार होता है। मुंबई के टूरिस्ट इसे खरीदे बगैर नही लौटते। फिर भी किसान के हिस्से में केवल गरीबी ही है।

महाराष्ट्र के भूगोल में उत्तर से दक्षिण सह्याद्रि का पठार और घाटियाँ हैं। घाटमाथे पर उत्तर से दक्षिण क्रम में पडने वाले जिले हैं नासिक, नगर, पुणे, सातारा, सांगली, कोल्हापुर। कोल्हापुर आते आते पठार की ऊँचाई समाप्त हो जाती है। उससे दक्षिण बेलगांव तो बिल्कुल तलछटी में है। सह्याद्रि के पश्चिम में कोंकण प्रदेश है। उधर से सहयाद्रि को देखो तो वह एक दुर्गम, आकाशगामी दीवार की तरह दीखता है। दीवार से नीचे कोंकण- बमुश्किल बीस'तीस किलोमीटर चौड़ाई का है- और फिर तत्काल समुद्र। लेकिन घाटमाथे के इस ओर- पूर्वी इलाके का दृश्य बिल्कुल अलग है। यहाँ पहाड़ की ऊँचाई धीरे धीरे कम होती है। घाटमाथे की नदियों का पानी पूर्व की तरफ बहता है। सो सारा प्रदेश पानी से भरपूर, बारहों महीने हरा भरा, साल में दो या तीन फसलों

वाला है। सम्पन्न। लेकिन यह वर्णन पुणे के उन सात तहसिलों में लागू होता है जो पूरब की दिशा में पहाड़ से थोड़ा नीचे उतर चुके हैं। मेरे हिस्से के चार व अन्य तीन तहसिल तो मावली थे। दुर्गम काले पहाड़ जो साल में आंबेमोहोर की एक फसल के सिवा कोई फसल नही उगाते थे। रास्ते बनाना दूभर। हाँ घास के कारण पशुधन अच्छा था।

....x...

मेरे हाजिर होने के थोड़े ही दिनों बाद गणपति उत्सव आया। पूरे महाराष्ट्र में और खासकर पुणे में यह जोर शोर से मनाया जाता है। भाद्रपद चतुर्थी के दिन गणेश जी की स्थापना होती है और अनन्त चतुर्दशी के दिन विसर्जन! लेकिन कई लोग तीसरे, पांचवें या नौवे दिन भी विसर्जन करते हैं। मेरे हिस्से में तलेगांव, लोनावला और भोर शहर थे जहाँ रात देर तक विसर्जन समारोह चलता था। ब्रिटिश राज में कभी किसी जमाने में वहाँ दंगे हुए थे सो नियम था कि विसर्जन के दिन प्रांतसाहब को वहीं डयूटी करनी है- ताकि दंगे न हों। इसी से तीनों के विसर्जन दिन भी अलग अलग थे। गाँव के प्रमुख चौराहे में एक मंडप और शमियाना खड़ा किया जाता- प्रांतसाहेब तथा पुलिस उप अधीक्षक के लिए। उन दिनों एक प्रौढ, अनुभवी उपअधीक्षक श्री पाटील थे। हमलोग रातभर वहाँ बैठकर मूँगफली, भुट्टा, चाय पकौड़े इत्यादि खाते-पीते रहते थे। दंगों का डर कबका विदा हो चुका था। अतएव टेन्शन नही था। विसर्जन के लिए चली मूर्ति के सामने ढोल व लेझीम सहित नाचने खेलने की प्रथा है। खेलने वाले हमारे पास आकर देर तक रूक कर पूरे जोश के साथ हमें खेल दिखाते थे। यह बारिश का महीना होता है और अक्सर हल्की बूंदाबांदी हो जाती है। ऐसे समय ढोल या हलगी का चमड़ा ढीला पड़ जाता और उससे खण्ण की आवाज की जगह भद्द की आवाज आती थी। हमारे मंडप में भुट्टे आदि भूनने के लिए आग या गैस जलाई जाती थी। उसी पर वे अपने ढोल तथा हलगी के चमडे को तपाते थे। फिर खेल शुरू हो जाता। इस आधे पौने घंटे में उनसे अच्छी बातें हो जातीं और गाँव की जानकारी भी- खास कर फसलों की जो तबतक भर चुकी होती हैं। उससे अंदाज हो जाता कि उस साल फसल और अनाज की उपलब्धता कैसी रहेगी।

इस वार्षिक उत्सव के लिए कई गॉवों के लेझिम-पथक पूरे साल भर तैयारी करते हैं। उनमें काम्पिटीशन होती है कि किसका खेल सबसे अच्छा रहा। मुलशी तहसिल का भूगांव लेझीम पथक मुझे आज भी याद है- जो उन दिनों पूरे जिले में एक नंबर पर माना जाता था। गणपति उत्सव के ढोल के ताल और सुर मेरे दिमाग में अंदर तक पैठ गए हैं। मुझे कभी इनसे कोई परेशानी नहीं होती। लाऊडस्पीकरों के लाऊड संगीत से मुझे सख्त ऑबजेक्शन है। कभी कभी तो "भूले बिसरे गीत" में बजने वाले मेलोडियस गाने भी शोर जैसे लगते हैं- लेकिन ढोल-हलगी कभी शोर नहीं लगती।

....x...

बिहार में शिक्षा होने के कारण मराठी साहित्य और साहित्यकारों से मेरा परिचय नहीं के बराबर था। एक दिन एक बड़ा सुंदर नॉवेल पढा- "हम भगीरथ के पुत्र"। भाखडा नांगल डॅम बनने की पार्श्वभूमि पर लिखा यह उपन्यास धरण बनाने वाले इंजिनियरों की कुशलता को समर्पित है। मुझे यह इतना पसंद है कि तब से आज तक इसे हिंदी में अनूदित करने की इच्छा मन में है। किसी ने बताया कि इसके लेखक दांडेकर तलेगांव में रहते हैं। लेकिन उनसे मिलने में संकोच होता रहा। आज पता चलता है कि मैंने क्या खोया, क्योंकि दांडेकर न केवल एक अच्छे साहित्यकार

बल्कि सहयाद्रि के पठारों पर बसे सभी किलों के एनसाइक्लोपीडिया थे। ऐसी ही एक और मुलाकात से मैं वंचित रही- वे थे शिक्षण- गुरू जे.पी.नाईक जो मेरे इस कार्यकाल में काफी बीमार थे लेकिन थे पुणे में ही।

मेरी प्रांतसाहबी के चार वर्ष पूर्व अर्थात् १९७२ और १९७३ में महाराष्ट्र में अभूतपूर्व अकाल पड़ा। इससे छुटकारे के लिए दो योजनाएँ सामने आईं। एक थी रोजगार हमीं योजना, इस में सरकार ने रास्ते बनाने, सिंचन तालाब और मृदा-संधारण के काम शुरू किए जिसपर काम करके लोगों को मजदूरी मिल सके। अहमदनगर और सोलापुर जैसे जिलों में पचास हजार से एक लाख तक लोग ऐसे कामों में लगाए गए। मावली तहसिलों में ये काम संभव नहीं थे। लेकिन अच्छी बात थी कि घास और पशुधन की बहुलता के कारण उन्हें इसकी अधिक आवश्यकता नही थी। दूसरी थी अनाज के लेव्ही की योजना जिसके अन्तर्गत किसान के खेत में पके अनाज में से एक बड़ा हिस्सा सरकार खरीदती थी। इसके दर निश्चित थे। अधिकतर लेव्ही ज्वार या बाजरा की होती थी। कभी कभी चावल और गेहूँ भी। कलेक्टर की मीटींग में पहला अजेंडा यही होता था कि किस तहसील का लेव्ही कलेक्शन कितना रहा।

प्रांतसाहब को हर महीने कम से कम २० गांवों में व्हिजिट, इन्स्पेक्शन आदि तथा दस गाँवों में नाइट-हॉल्ट रखना पड़ता था। तब फोन इत्यादि सुविधाएँ अल्यल्प थीं। हमारा एक महीने का कार्यक्रम पहले ही सूचित किया जाता था। फिर पटवारी उस उस गाँव में लेव्ही अनाज के बोरे तैयार रखते थे। प्रांत साहेब के आने पर उन्हें सजीधजी बैलगाड़ी में बिठाकर गांव के चौपाल में बाजे गाजे के साथ ले जाया जाता। वहाँ पर पहले ही बोरियों में लेव्ही का अनाज, तराजू इत्यादि तैयार रहता था। तहसिल से सिव्हिल सप्लाई क्लार्क और गोडाऊन कीपर पहुँचे रहते थे। फिर प्रांतसाहब के हाथों तराजू का विधिवत् पूजन, नारियल फोडना, फिर अनाज की गड्डी तराजू में रखवाना, इत्यादि सम्पन्न होता, उधर सप्लाई क्लार्क खटाखट रसीद फाड़ता चलता था।

लेकिन कभी कभी कलेक्टर का तय किया हुआ टार्गेट पूरा नही होता था। फिर क्या था? पटवारी मीटींग में पटवारी को फायरिंग! अर्थात फायरिंग के लिए पटवारी और शान से सवारी निकालने के लिए प्रांतसाहब- यही काम का बंटवारा होता था। हम- यानी मैं और दूसरे प्रांतसाहव चर्चा करते- कि हम इतनी कड़ाई दिखाते हैं और पटवारियों से काम करवाते हैं, जब कि खुद हम वरिष्ठों की कड़ाई के कारण नही बल्कि अपनी कर्तव्यनिष्ठा के कारण काम करते हैं। यह मुगालता लम्बे काल तक रहा। ऐसे में पटवारी के हाथ में एक ही उपाय बचता था कि किसान को खतरा खतौनी आदि के कागज तबतक न दे जबतक उसके टार्गेट पूरा न हो जाए, चाहे वह लेव्ही के टार्गेट हों या लगान वसूली के। स्मॉल सेव्हिंग योजना के लिए किसान से पोस्ट ऑफिस में पैसे जमा करवाने हों या शिक्षक दिन के लिए फंड इकट्‌ठे करने हों। फिर किसान हमारे पास शिकायत करते कि पटवारी खसरा खतौनी के कागज नहीं दे रहा। तो हम फिर पटवारी को धमकाते थे। जिस पटवारी को एक बार किसान के कागज रोक कर सरकारी टार्गेट के लिए पैसे जमा करने की आदत पड़ गई वह अपने लिए भी कुछ जमा पूँजी कर ही लेता था। लेकिन यह भी सौ प्रतिशत सही नही है। तहसिलदार, प्रांतसाहेब, कलेक्टर, मंत्री आदि जब भी किसी गांव का दौरा करते हैं, उनके खाने पीने और तामझाम की व्यवस्था पटवारी करते हैं। फिर उसके पास यही उपाय होता है कि गाँव के धनी किसानों से कह कर व्यवस्था करें। यहीं से भ्रष्टाचार की शुरूआत होती थी। इसी से मैंने अपने लिए नियम बना लिया था कि दौरे पर जाना हो तो अपने खाने का बिल, या साथ में जितने भी कनिष्ठ अधिकारी हों, सबका बिल मैं ही देती। कोई वरिष्ठ अधिकारी मेरे इलाके में आते तो यथासंभव सादगी बरती जाती। मजा यह कि जब भी कभी मेरे कलेक्टर या कमिश्नर दौरे पर आए, वे भी अपने सहित तमाम कनिष्ठों का बिल खुद देते थे- मुझे नही देने देते। लेकिन मंत्रियों की बात अलग थी। उनका खर्चा औरों को उठाना पड़ता।

यहाँ तय कर पाना मुश्किल है कि पटवारी की ईमानदारी किस जगह समाप्त होती है और कहाँ से उसका भ्रष्टाचार शुरू होता है। फिर भी जब भी कोई किसान शिकायत करे, तो उसकी शिकायत दूर करना हर हालत में पहला फर्ज बनता था।

लेव्ही के विषय में बारामती के प्रांत अधिकारी जैन ने अपना प्रिय किस्सा सुनाया। वे तब नए नए एम्.पी.एस्.सी की परीक्षा उत्तीर्ण होकर प्रोबेशनर प्रांत अधिकारी लगे थे। तहसिलदार के साथ लेव्ही वसूलने गए। एक गाँव में किसी किसान के घर भोजन की व्यवस्था थी। दस बारह कर्मचारी और गाँव के आठ दस अन्य प्रतिष्ठित। पंगत चल रही थी कि किसी गरजवश गृहपति ने भंडार-घर खोला। तहसिलदार ने देख लिया कि वहाँ कई बोरियाँ भर अनाज रखा हुआ था जबकि किसान ने पूरी लेव्ही यह कहकर नही भरी थी कि अधिक अनाज पैदा ही नही हुआ। फिर क्या था? पंगत आधे खाने पर ही रूक गई। तहसिलदार उठे। बोरियाँ गिनी। लेव्ही के हिसाब से बोरियों पर ठप्पा लगाया- सरकारी गोदाम का। सप्लाई क्लर्क से रसीदें बनवाईं- तब कहीं जाकर पंगत आगे बढी। तहसिलदार ने सबको सुनाते हुए जैन से कहा- प्रांतसाहव, इससे अनाज वसूली करके हम अपना सरकारी टार्गेट पूरा कर रहे हैं- कर्तव्यनिष्ठा दिखा रहे हैं- यह भावना पलभर को भी मन में न लाइए कि इसी के घर अन्न ग्रहण कर इसी का अनाज कैसे सरकार-जमा कराऊँ। अन्न ग्रहण अपनी जगह है, कर्तव्य पूर्ति अपनी जगह! जैन यह तत्व-दर्शन सुनकर अवाक् रह गये।

....x..

ग्रामीण जमीन, खसरा खतौना आदि का हिसाब पटवारी रखता है। लगान वसूली कर तहसील ट्रेझरी में जमा करना उसी का काम है। और भी कई तरह के हिसाब। यह सारे समुचित ढंग से लिखे जायें और उनका इन्स्पेक्शन एवं ऑडिट भी ठीक ढंग से हो, इसके लिये १९१५ में अँडरसन नामक एक प्रसिद्ध आय् सी एस अधिकारी ने रेवेन्यू मॅन्यूअल लिखा जो बॉम्बे प्रेसिडेन्सी में लागू हुआ- अर्थात् महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक में। यहाँ की सिस्टिम पूरे भारत में सबसे अच्छी मानी जाती है। आज सौ वर्ष होने को आए लेकिन उस व्हिलेज अकाऊंट-सिस्टिम मे कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नही पड़ी। महाराष्ट्र केडर के प्रोबेशनर जब मसूरी के एक वर्ष ट्रेनिंग के बाद अपने राज्य में एक वर्ष ट्रेनिंग के लिए जाते हैं तो उन्हें इस मैन्यूअल से सामना करना पड़ता है। इसलिए कि वर्ष के अंत में जो परीक्षा होनी है, उसके बाकी सात पेपर्स के उत्तर तो पुस्तक देखकर लिखने का रिवाज है लेकिन अँडरसन मॅन्यूअल का पेपर बगैर किताबी सहायता से लिखना पड़ता है। कई वर्षों बाद मैं पुणे में सेटलमेंट कमिशनर बनी तो मेरे कार्यालय का एक कमरा दिखाते हुए जानकारों ने बताया कि वहाँ बैठकर ॲण्डरसन ने अपना रेवेन्यू मॅन्यूअल लिखा था।

मॅन्यूअल में बताया गया है कि पटवारी गाँव के हिसाब कैसे लिखे और कलेक्टर, प्रांतसाहेब या तहसिलदार उनका ए ऑडिट- अर्थात विस्तृत ऑडिट और बी ऑडिट अर्थात् समरी ऑडिट कैसे करें। प्रांतसाहब को वर्ष में बीस ए ऑडिट पूरे करने होते थे। जिस प्रकार कोई अच्छा चार्टर्ड अकाऊन्टेन्ट किसी कम्पनी का ऑडिट कर उस कंपनी के स्वास्थ्य और व्यवहार की ईमानदारी को जान लेता है उसी प्रकार अच्छा अफसर ए ऑडिट के माध्यम से गाँव की हाल चाल और पटवारी की नियत को जान लेना है। एक अच्छा ऑडिट करने के लिए छः घंटे और बी ऑडिट के लिए एक घंटा लग जाता है। उतना भी समय न हो तो कम से कम फॉर्म नंबर छः, सात, बारह, नौ, आठ और एक तो देख ही ले। कम से कम छः नंबर पर हस्ताक्षर तो कर ही दे ताकि पटवारी उसपर बॅकडेटेड एन्ट्री न कर सके- आदि कई गुर थे। मेरे प्रोबेशन काल में सुबह एक बार कलेक्टर को अभिवादन कर लेने के बाद मेरा समय अक्सर हवेली प्रांत अधिकारी के ऑफिस में गुजरता था जो उसी कम्पाऊंड में था। यह प्रांत अधिकारी खानोलकर अत्यन्त निष्णात थे और कई गुर मैंने

यहीं सीखे। मैं अपना ए ऑडिट भी तीन घंटों में समाप्त कर पाती थी। कहना नहीं होगा कि जब अँडरसन मॅन्यूअल की परीक्षा हुई तो उस पेपर में मुझे डिस्टिंक्शन के मार्क आये। एक वर्ष के बाद उनका तबादला हुआ पिंपरी चिंचवड नगर विकास प्राधिकारी के पद पर और मैं हवेली प्रांत अधिकारी नियुक्त हुई। पुणे शहर के बाहर जितने भी नए उद्योग लग रहे थे वे सब पिंपरी चिंचवड गाँवों में

लग रहे थे। इसी से यहाँ नई नगर पालिका बनाने की आवश्यकता आन पड़ी थी। उसी को मूर्त रूप देने के लिए प्राधिकारी की नियुक्ति हुई। वैसे यह हिस्सा मेरे ही कार्यकक्षा में पड़ता था। सो मेरी और खानोलकर की मित्रता कायम रही।

इन्स्पेक्शन के समय वे बताते थे- सोचो कि इस इन्स्पेक्शन से मैं क्या साध्य करना चाहता हूँ और बाद में अपने से पूछो- क्या मैंने वह साध्य किया। दूसरे अधिकारी गाँव के राशन दुकान का इन्स्पेक्शन करेंगे तो उसके रजिस्टर के कुछ पन्ने देख लेंगे, फिर कुछ खरीददारों से माँगकर रसीद देखेंगे और लिख देंगे अपने रिपोर्ट में- दस रसीदें देखीं, दुकानदार का रजिस्टर देखा- बस। लेकिन खानोलकर अपने रिपोर्ट में रसीद नंबर दर्ज करते थे और रजिस्टर के वह पन्ने भी जाँचते जिनमें इन्हीं रसीदों की काऊंटरफॉईल होती थी। साध्य क्या था- कि यदि दुकानदार बेईमानी कर रहा हो तो उसे पकड़ा जा सके। इसी लिए रसीदों का मिलान रजिस्टर के संबंधित पन्ने से होना चाहिए- इस बात का वे खूब ध्यान रखते थे।

फिर भी खानोलकर प्रौढ और कन्वेन्शनल अधिकारी थे जबकि खेड प्रांत में गोपाल नामक मुझसे केवल दो वर्ष सीनीयर आई.ए.एस अधिकारी प्रांतसाहेब थे। उससे कुछ अलग बातें सीखीं।

एक बार कलेक्टर के साथ सभी तहसिलदार और प्रांत अधिकारियों की मीटींग चल रही थी कि मुंबई से संदेशा आया कि खुद मिनिस्टर तथा सेक्रेटरी पुणे जिले के कार्यों का जायजा लेने के लिये अगले दिन मिटींग करेंगे। बस, कलेक्टर ने अपना अजेंडा रोक दिया और सबको सूचनाएँ दी अगले दिन की तैयारी के लिए। मैं, गोपाल, खानोलकर सभी हवेली प्रांत के दफ्तर में आए। गोपाल ने हमारे हेड क्लर्क से कहा- फोन मिलाओ। फिर करीब पंद्रह मिनट तक अपने हेड क्लर्क को सूचना देता रहा कि कल की मीटींग के लिये इस मुद्दे का रिपोर्ट चाहिये, वह चार्ट चाहिए, इस मुद्दे को ऐसे लिखना है इत्यादि, अब आप लोग दिन रात बैठ रिपोर्ट बनाइए और सुबह बस पकडकर पुणे पहुँचिए- मैं यहीं रूक रहा हूँ। जब गोपाल का फोन खतम हुआ तो खानोलकर ने अपने हेड क्लर्क से कहा- यह जो सारा अभी सुना, वही तुम्हें भी करना है- मैं अब अलग से कोई सूचना नही देता। हेड क्लर्क भी पुराना खिलाड़ी था- उसने अपनी नोट बुक हमारे सामने रखी। मैंने आश्चर्य से देखा- जब गोपाल

अपने हेड क्लर्क को सूचना दे रहा था, तब ये सज्जन भी उसे लिखते जा रहे थे।

इस घटना से मैंने सीखा कि कहीं भी रहने के बावजूद अपने ऑफिस पर रिमोट कण्ट्रोल कैसे किया जाता है।

एक बार कलेक्टर सुब्रहमण्यम खेड प्रांत के दौरे पर जाने लगे तो मुझे भी साथ ले गए- जाने के लिए उनकी कार थी। लेकिन जिन गाँवों मे उन्हें इन्स्पेक्शन करना था, वहाँ कार नही चल सकती थी। जीप का ही सहारा था। उन दिनों सरकारी कार्यालयों में गाडियाँ नही के बराबर होती थी। खेड जैसे दूरस्थ गाँव में केवल एक प्रांत अधिकारी की जीप अर्थात गोपाल की। हमारे दल के साथ जानेवालों मे पटवारी, मंडल अधिकारी, कलेक्टर का सिपाही इत्यादि भी मौजूद।

हम लोग जीप की तरफ बढने लगे तो गोपाल ने कहा- मैं ड्राइव करूँगा, कलेक्टर साहब बीच में और लीना, तुम किनारे पर बैठना। बाकी बस लोग पीछे बैठेंगे। बाद में धीरे से मुझसे कहा- कभी भी सिनियर्स के साथ दौरा करना पडे तो खुद ड्राइविंग करना वरना पीछे बैठना पड सकता है, फिर सिपाही, पटवारियों पर रोब नही रहता। लेकिन सिनियर्स को कैसे विश्वास हो कि

तुम अच्छा ड्राइविंग कर लेती हो? इसलिये हमेशा खुद ही ड्राइविंग किया करो ताकि कलेक्टर के कान में यह बात जाती रहे कि तुम्हें ड्राइविंग आती है।

बाद में जब मैं प्रांत साहब बनी तब सुब्रहमण्यम् बदल चुके थे और नए कलेक्टर अफझुलपुरकर आ गए थे। मुझे हंसी आती है कि एक बार मेरे विभाग में अफझुलपुरकर इन्स्पेक्शन करने आए और मैं जीप में ड्राइविंग सीट पर बैठने लगी तो उन्होंने रोक दिया। कहा- मैं ड्राइव करूँगा तुम उधर दूसरी तरफ बैठो। बाद में कहने लगे- मैंने सुना है कि तुम भी अच्छा ड्राइव कर लेती हो लकिन मुझे भी आज कई वर्षों बाद जीप ड्राइविंग का मौका मिला है। इस प्रकार कलेक्टर पर अपनी ड्राइविंग की धाक जमाने का मेरा मौका चूक गया।

मैं प्रांतसाहब बनी, तभी पुणे जिले में भारतीय विदेश सेवा का एक अधिकारी फ्रान्सिस प्रोबेशनर आया। साथ ही टेलिफोन सेवा में एक प्रोबेशनर आया महेंद्र। फ्रान्सिस ट्रेनिंग के लिये मेरे साथ ही अटैच्ड् था। महेंद्र के सिनियर्स पर मैंने अपने प्रांत होने का रोब जमाकर इजाजत ले ली थी कि हमारे दौरे में वह भी साथ आया करेगा। भारतीय विदेश सेवा के सभी अफसरों को एक वर्ष के लिये ग्रामीण इलाकों में ट्रेनिंग दी जाती है ताकि विदेश जाने से पहले उन्हें पता रहे कि अपने देश में छोटे से छोटे लेवल पर प्रशासन का काम कैसे चलता है। महेंद्र को भी आगे चलकर ग्रामीण इलाकों में टेलिफोन नेटवर्क पहुँचाने जैसे काम करने ही थे।

सो हम तीनों दौरे पर जाते- जीप मैं अगली सीटों पर बैठकर। पीछे हमारे पटवारी, ड्राइवर, क्लर्क इत्यादि होते। रास्ते में हम लोग शोर मचाते, गीत गाते, अंताक्षरी खेलते और झगड़ते भी थे। लेकिन इन्स्पेक्शन की जगह पहुँचकर एकदम गंभीरता धारण कर लेते थे। इसी समय डिफेन्स अकाउंट सर्विस में राधा नामक अफसर भी आ गई थी। मैं और राधा पंजाबी ड्रेस पहने, किराए की साइकिल लेकर पुणे में चक्कर काटते। चूँकि मेरा कार्यक्षेत्र पुणे से बाहर था सो यह डर नहीं होता था कि लोग देखेंगे और मेरा रोब खतम हो जायगा। इससे मैंने एक बात और सीखी- अपने पोस्टिंग के स्थान पर यदि "प्रसिद्ध" होने के मोह से अपने को बचाकर रखा जाए तो अपनी मर्जी की कई बातें की जा सकती हैं और यह डर नही रहता कि कोई देखेगा तो क्या कहेगा। अपनी प्राइवसी बची रहती है। वरना भाप्रसे की नौकरी में प्रसिद्ध होने के मौके और मोह दोनों ही बहुतायत से होते हैं।

....x..

यों मेरी दिनचर्या चल रही थी कि तभी लोकसभा चुनाव घोषित हो गए। इसके लिए मतदाता सूची बनाने का जिम्मा कलेक्टर और प्रांतसाहब का होता है। उपर से निर्देश मिला कि अमुक प्रतिशत जाँच पडताल प्रांतसाहब स्वयं करें। मुझे आज भी याद आता है कि कैसे एक दिन लोनावला में भरी बारिश में, मैं फ्रान्सिस और महेंद्र ने लोगों के घर-दुकान में जा जाकर मतदाता सूची की पडताल की थी।

लोनावला एक अच्छा टूरिस्ट स्पॉट है जहाँ मुम्बई से भारी संख्या में लोग आते हैं। यहाँ दसियों दुकानदार "चिक्की" अर्थात् मूँगफली और गुड की रेवडी बनाते हैं। लेकिन सर्वोत्तम माना जाता था कूपर चिक्की को। इस कपूर चिक्कीवाले का लडका फ्रान्सिस का दोस्त निकला। हमारी जान पहचान हुई। लेकिन इसके बाद जल्दी ही अचानक वह लड़का कार ॲक्सीडेंट में मारा गया। इकलौता लड़का। कपूर चिक्की की दुकान उस दिन से जो गिरने लगी सो महीनों तक नही संभल पाई। मेरी आँखों के सामने चार पाँच वर्षों में ही एक अच्छे कारोबार का ह्रास होते हुए देखा। बाद में कूपर की बेटी खुर्शीद ने उसे फिर संभाल लिया।

इसका उलटा भी देखा है- व्यंकटेश हॅचरी के रूप में। में प्रोबेशनर थी जब एक गाँव में थोड़ी सी जमीन पर चार पांच सौ मुर्गियों से यह हॅचरी शुरू हुई। अगले दो वर्षों तक वे जमीन खरीदते रहे- कारोबार बढाते रहे- इस या उस अनुमति के लिये मेरे ऑफिस आते रहे और देखते देखते अपना कारोबार इतना बढा लिया कि दस वर्षों में ही यह एशिया की एक बड़ी हॅचरी बन गई। मैं दौरे के लिये अक्सर उधर से गुजरती और अपनी आँखों के सामने देखती कि कैसे एक अच्छा कारोबार फल फूल रहा है। अपनी मुर्गियाँ बेचने के लिए दूसरे लोगों को हॅचरी में प्रेरित करना, सरकार से सुयोग्य नियम कानून बनवाना, अंडों का मार्केट ऑर्गनाइज करना, जैसे कई काम इसके प्रणेता राव ने किए। हालाँकि वे अब नही रहे लेकिन अब भी यदि

मैं उधर से गुजरूँ तो लगता है यह अपनी ही हॅचरी है, इसकी उन्नति और प्रगति में अपना भी कुछ योगदान है, शुभकामनाएँ हैं।

इसी कार्यकाल में एक बार तत्कालिन प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी का पुणे दौरा तय हुआ। वे खडकवासला स्थित नॅशनल डिफेन्स अकादमी (NDA) और सेंट्रल वॉटर ॲण्ड पॉवर रिसर्च इन्स्टिटयूट में भी जानेवाली थीं। प्रधानमंत्री की सुरक्षा व्यवस्था का तामझाम बहुत बडा होता है, दिल्ली से कई गुप्तचर अधिकारी पहले से आ धमकते हैं। फिर भी लोकल कलेक्टर और प्रांतसाहब की जिम्मेदारी बनी रहती है। इसलिये मैं भी पहले एक इन्स्पेक्शन दौरा करने गई। NDA में ॲडमिरल आवटी थे और CWPRS में डॉ. सक्सेना। एक महिला अधिकारी इन्स्पेक्शन के लिये आई इसका लाभ उठाते हुए दोनों ने तत्काल मुझे सबसे पहले वह कमरे दिखाये जहाँ इंदिराजी के ठहरने या आराम की व्यवस्था थी- "एक महिला की नजर से देखकर बताइये- यदि इसमें कोई कमी रह गई हो तो"। इंदिराजी जिस गाडी में बैठकर उस क्षेत्र में घूमनेवाली थीं उसमें बैठकर भी मैंने जायजा लिया- सीट कितनी आरामदेह है, लेग स्पेस समुचित है या नही नजर की लेव्हल कहाँ तक जाती है और वहाँ क्या क्या दीखता है इत्यादि। लेकिन एक समस्या थी कि इंदिराजी की तुलना से मैं बहुत ही नाटे कद की हूँ। सो हम लोगो ने एक लम्बे व्यक्ति को बिठाकर फिर से सारा इन्स्पेक्शन पूरा किया।

इस बहाने इन दोनों उच्चाधिकारियों से मेरी अच्छी पहचान हो गई। बाद में एक बार मुझे ऑस्ट्रेलिया में भूगर्भ विज्ञान की पढाई के लिये आवेदन देना था जिसमें रेफरन्सेस देने थे। मैंने डॉ. सक्सेना से रेफरन्स माँगा और अपना आवेदन पत्र भी उन्हें दिखा दिया। इसमें मैंने लिखा था कि चूँकि मैं पानी संकट से जूझने वाले एक प्रांत में हूँ, अतः यह पढाई मेरे काम आयेगी। डॉ सक्सेना ने उसे काट दिया। लिखवाया कि भारतीय प्रशासन सेवा के अधिकारी सरकार में वरिष्ठ भूमिकाएँ निभाते हैं। योजना, उनका कार्यान्वयन, नीतिनिर्धारण इत्यादि के लिये पानी के स्त्रोतों की जानकारी आवश्यक है, अतएव इस पढाई का लाभ मेरे कैरियर के अगले पच्चीस वर्षों में मुझे तथा मेरी सरकार को होगा। अपने काम के विषय में इस तरह दूरगामी विचार करने की सीख मुझे उनसे मिली। तब से मेरी आदत बन गई कि कोई नई योजना बनाते समय उसके शीघ्र परिणाम और दूरगामी परिणाम दोनों को सोचो, उसी हिसाब से योजना बनाओ, उसके नियम बनाओ। कई बार मैंने दूसरों के लिखे बायोडाटा भी इसी प्रकार सुधार दिए और उनसे धन्यवाद लिया, तब मुझे डॉ सक्सेना की याद आती है। दुर्भाग्यवश वे जल्दी ही कालवश हो गए।

....x..

उन दिनों इमर्जन्सी चल रही थी और फॅमिली प्लानिंग कैम्पस् पर काफी जोर था। हर कलेक्टर, प्रांतसाहब और तहसिलदार के लिये टार्गेट तय किया जाता था जो अन्ततः फिर पटवारी पर आता था। यह कोई ऐसा काम नही था जो पटवारी खसरा खतौने की कापियाँ देने से मना

करके या वसूली का डर दिखाकर लोगों से करा ले। यहाँ लोक प्रबोधन की काफी आवश्यकता थी। सो मैंने भी कई लेक्चर दिये हैं, ग्राम सभाओं में और कहाँ कहाँ। इसमें मैं देश की जनसंख्या से उत्पन्न समस्याएँ, गरीबी, कृषि जमीन की घटती पैदावार, अशिक्षा आदि बातों पर बल देती। साथ ही जहाँ कैम्प लगाया है वहाँ की सुविधाओं की जाँच, मेडिकल टीम से विचार विमर्श इत्यादि। खासकर महिलाओं की अपेक्षा पुरूषों की नसबंदी की उपयोगिता लोगों के साथ-साथ प्रशासन के कर्मचारियों और अधिकारियों को समझाना। उन दिनों लेप्रोस्कोपी तकनीक नही थी। महिला शस्त्रक्रिया एक गंभीर शस्त्रक्रिया होती और महिला को पच्चीस तीस दिन अस्पताल में रखना पड़ता। सरकार उसे इन्सेन्टिव्ह के तौर पर एक सौ पचीस रूपये देती। इसलिए मैंने पिंपरी चिंचवड नगर पालिका से एक स्कीम बनाने को कहा जिसमें पुरूष नसबंदी होने पर उसे एक हजार

रूपये का इन्सेन्टिव्ह दिया जाने लगा। सो हवेली प्रांत के जितने भी पुरुष नसबंदी के लिये राजी होते उन्हें हम पिंपरी ले आते। इस कारण इन दो वर्षों में पिंपरी में कई हजार पुरूष नसबंदी के ऑपरेशन हुए।

वह इमर्जन्सी का दौर था। पूरे देश में फॅमिली प्लानिंग ऑपरेशन्स पर जोर था। मेरे जो बॅचमेट अन्य राज्यों में थे, उनसे में सुनती कि वहाँ क्या क्या धांधलियाँ या जोर जबर्दस्ती हुई। ऐसा भी नही कि महाराष्ट्र में सब तरफ ऑल-वेल हो। ऐसे में एक सजग अधिकारी केवल इतना कर सकता है कि अपने इलाके में जहाँ तक संभव है धांधलियॉ, गबन या जुलुम न होने दे। थोड़ा प्रेशर बनाना जरूरी होता था जिसके लिये जिला परिषद के लोक नियुक्त सदस्य भी प्रचार सभाओं के माध्यम से काफी मददगार साबित हो रहे थे।

यह एक अलग डिबेट का विषय है कि क्या जनसंख्या नियंत्रण आवश्यक है, और यदि है तो क्या नसबंदी ऑपरेशन ही उसका एक मात्र तरीका है? या यह कि जनसंख्या नियंत्रण का उद्देश्य पूरा करने में नसबन्दी का योगदान कितने प्रतिशत है? लेकिन यह भी दुर्भाग्यपूण है कि १९८० के बाद दुबारा किसी सरकार या किसी पार्टी की हिम्मत नही हुई है इस विषय पर लोक बहस करवाने की।

……………………………………x…………………………………

मेरे प्रशिक्षण कार्यकाल में भी मैं अच्छी खासी टूटिंग कर लेती थी। और प्रांतसाहब की पोस्टिंग के बाद तो यह काफी बढ गई। महीने में अठारह दिन टूर, जिसमें दस नाईट हॉल्ट कम्पल्सरी थे। कहने को तो ऑफिस साढ़े दस से साढे पांच होता था लेकिन सारे मंत्री, सिनियर्स, व्ही आय पी, लॉ ॲण्ड ऑर्डर, व्हिलेज इन्सपेक्शन, लगान वसूली और लेव्ही या फॅमिली प्लानिंग जैसे कॅम्पेन के कारण ऑफिस जाने के या आने के समय की कोई गॉरन्टी नही थी। इसके ठीक उलटा प्रकाश के जाने आने का समय बिल्कुल घड़ी की तरह था। सुबह सात से लेकर शाम के सात। थोड़े ही दिनों में हमने अपना रूटिन इसी हिसाब से ॲडजस्ट कर लिया।

फिर आहट हुई घर में एक नन्हा मेहमान आने की। उसी समय हम घर में एक अल्सेशियन पपी भी ले आये, उसका नाम रखा टोटो। आदित्य और टोटो करीब करीब साथ साथ ही बडे हुए। टोटो को प्रकाश ने बडी अच्छी ट्रेनिंग दी थी जिससे वह पूरे इलाके में प्रसिद्ध था।

आदित्य के जन्म से पहले मैं अकेली ही टूर पर जाती और कभी कभी प्रकाश भी साथ होते। पुणे के आसपास कई शिवाजी कालीन किले हैं, वह दुर्गभ्रमण हम दोनों को पसंद था। आदित्य के जन्म के बाद मेरे नाइट हॉल्ट का प्रोग्राम सदलबल होने लगा- मेरे साथ आदित्य, उसकी बूढी आया, ऑफिस का चपरासी, टोटो, उसके खाने-बिछाने का सामान इत्यादि। वे सारे डाक बंगले में रूकते थे और मैं जाकर अपना काम करती। कभी कभी प्रकाश भी साथ हो तो वे सारे

किले और पहाड़ों पर निकल जाते। इस प्रकार टोटो और आदित्य ने वे सारे पहाड़ और किले घूम लिये। आज इतने वर्षों बाद भी डाक बंगले के पुराने नौकर, खानसामें और पुराने पटवारी टोटो को याद कर लेते हैं और आदित्य का हालचाल पूछ लेते हैं।

इसी दौरान लोकसभा चुनावों की घोषणा हुई और मैंने जान लिया कि अब तो मेरा काम और भी बढेगा। सो मैंने दो महीने आदित्य को माँ के पास रखने का फैसला किया। इससे पहले भी एक महीने ट्रेनिंग के लिये मसूरी जाना पड़ा तब आदित्य मुंबई में मेरी सासूजी के पास रहा। मैं यदि कहूँ कि आरम्भिक कार्यकाल में मेरी कार्यक्षमता बढाने में आदित्य की दादी- नानी का बडा हाथ था, तो यह अतिशयोक्ति नही होगी। मेरे ही नही बल्कि मेरी बहन और भाई के बच्चे भी कई कई महीने मेरी माँ के पास रहे हैं और आज भी अपने माँ-बाप से अधिक मेरे माँ-पिताजी को मानते हैं। मुझे लगता है कि एकत्रित कुटुम्ब पद्धति की यह बडी विशेषता थी। आज भी यदि सास-बहू, या ननद-भाभियाँ आपसी रिश्ते में एक दूसरे का सम्मान

बरकरार रखें तो इस विशेषता का लाभ उठा सकती हैं। मेरी तीनों ननदें मुझसे बडी और खुद नौकरी वाली थीं। अतएव मेरी सासूजी भी मेरी नौकरी की आवश्यकताओं को समझती थीं और उनका खयाल रखती थीं। हम दोनों के बीच एक कड़ी और थी। यद्यपि वे विशेष पढी लिखी नही थीं लेकिन रोजाना तीन अखबार पढती थीं और पोलिटिक्स की अच्छी समझ रखती थीं। उन्हें इस विषय पर चर्चा के लिये मुझसे अच्छा किस्सागों घर में और कोई नही था। सो वे मेरे काम में काफी रूचि लेती थीं।

लोकसभा चुनाव एक तरह से शादी के तामझाम की तरह होते हैं। कितना भी काम करो, कम ही है। पूरी जिम्मेदारी कलेक्टर की। इलेक्शन के काम के लिये वह जिले में स्थित किसी भी सरकारी कार्यालय से चाहे जितने कर्मचारी, गाडियाँ और अन्य सामग्री रिक्विझिशन कर सकता है।

फिर इन कर्मचारियों को प्रशिक्षण भी देना पड़ता है- जो जिम्मेदारी प्रांत अधिकारी की थी। कुल तीन बार ट्रेनिंग क्लास लेनी थी। हालाँकि मेरे लिये भी यह काम नया ही था लेकिन किसी जमाने में कॉलेज में लेक्चरी की थी जो काम आ गई। उस ट्रेनिंग को भी लोग याद करते हैं।

लोकसभा चुनावों में इंदिराजी हारीं- और देश में पहली बार गैर कांग्रेसी सरकार बनी। इस चुनाव में एक घटना घटी जिसने आगे चलकर मुझे भी प्रभावित किया।

हुआ यों कि पुणे जिले की तीन लोकसभा सीटों में से एक खेड लोकसभा सीट के लिये ॲडिशनल कलेक्टर अरूणा बागची रिटर्निंग ऑफिसर थीं। यह तय था कि इस सीट के लिए अण्णासाहब मगर को कांग्रेसी टिकट मिलेगा और वे जीतेंगे भी। लेकिन एक समस्या थी। पिंपरी चिंचवड म्युनिसिपल कार्पोरेशन हाल में ही बना था, उसका पहला चुनाव होना बाकी था, अतएव एक्ट के मुताबिक राज्यपाल ने अपने अधिकार में अध्यक्ष के पद पर अण्णासाहब की नियुक्ति की थी। यदि वे लोकनिर्वाचित अध्यक्ष होते तो कोई बात नही थी। लेकिन फिलहाल वे सरकार द्वारा नियुक्त अध्यक्ष थे। अतएव मुद्दा यह उठा कि क्या वे वहाँ से पदत्याग किये बगैर चुनाव में उम्मीदवार बन सकते हैं?

बागची ने अपने कार्यालय में अच्छे अच्छे वकीलों को बुलाकर उनसे राय सलाह आरंभ कर दी। उन मीटींगों में मैं भी शामिल थी। उधर अण्णासाहब के वकील भी अपनी राय बनाने लगे। अभी नामांकन पत्र भरने में देर थी लेकिन यह कानूनी पेचिदगी अखबारों में भी छपी। सारी चर्चा एक मुद्दे पर टिक गई कि "एन्जाईंग ऑफिस ऑफ प्रॉफिट अंडर अपॉईंटमेंट ऑफ गवर्नमेंट" का क्या अर्थ निकाला जायगा। इधर अण्णासाहब की ओर से दुहराया जाने लगा कि पदत्याग आवश्यक नही और वे नही करेंगे। उधर बागची के

ऑफिस से कहा जाने लगा कि यदि पदत्याग न किया हो तो नामांकन जाँच के दिन बागची उनका नामांकन नामंजूर कर देगी। यह भी महत्वपूर्ण है कि ऐसे मामलों में रिटर्निंग अफ़सर का

फैसला अन्तिम माना जाता है। हमलोग उत्सुकता से इंतजार कर रहे थे कि नामांकन वाले दिन दोनों पक्षों के वकीलों में क्या बहस होती है और बागची क्या फैसला देती हैं।

लेकिन नामांकन भरने से एक दिन पहले अण्णासाहब ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। सारा सस्पेन्स, सारी रोचकता, गरमा गरम बहस, सब कुछ गुब्बारे की तरह पिचक कर शून्य हो गया। यही रोचकता तो सरकारी दफ्तरों की जान होती है, उसे अण्णासाहब ने नाकारा कर दिया। खैर!

पिंपरी चिंचवड कार्पोरेशन के लिये राज्यपाल ने मामासाहब मोहल को अध्यक्ष नियुक्त कर दिया। एक किस्सा खतम हो गया। अण्णासाहब चुनाव लडे, जीते और लोकसभा में आ गए। लेकिन अगले ही वर्ष महाराष्ट्र विधानसभा के चुनाव घोषित हुए जिसमें हवेली विधानसभा सीट के लिये मैं रिटर्निंग अफसर थी और मामासाहेब कांग्रेसी टिकट पर चुनाव लड़ना चाहते थे। इस बार देशभर में कांग्रेस विरोधी माहौल था। मामासाहेब को कोई गॅरंटी नही थे कि वे जीतेंगे, अतः वे अपने म्युनिसिपल अध्यक्ष के पद को छोड़ना नही चाहते थे। अन्त में पुणे जिले के सभी दिग्गज नेताओं की राय से उन्होंने तय किया कि वे इस्तीफा नही देंगे।

यहाँ वही खेल मैं खेल सकती थी जो बागची ने किया था। मैं राय सलाह के लिए वकील बुला

सकती थी। लेकिन मुझे अनुभव नही था। मैंने सोचा- सारी बहस तो मैं सुन चुकी हूँ। बागची बनाम अण्णासाहब के बहाने सारे कानून मैंने भी पढ डाले हैं। यह तो बड़ा स्पष्ट मामला है-"एन्जाईंग ऑफिस ऑफ प्रॉफिट अंडर अपॉईंटमेंट ऑफ गवर्नमेंट" का।

नामांकन पत्र जाँचने का दिन आया तो मामासाहेब के अलावा उनके वकील और जनता दल के उम्मीदवार के वकील भी आए। मामासाहब के वकील ने कहा- आप इन्जाईंग शब्द पर ध्यान दीजिए। मामासाहेब नियुक्त अध्यक्ष होने के बावजूद कार्पोरेशन से केवल एक रूपये का टोकन मासिक वेतन लेते हैं तथा ऑफिस आने जाने के लिए अपनी ही कार का इस्तेमाल करते हैं। इसे "एन्जाईंग" नही कहा जा सकता। बात थी बाल की खाल निकालने वाली।

ऐसे मौके पर चुनाव अधिकारी जो भी जाँच पडताल करता है वह समरी इन्कवायरी होती है। नियम में लिखा हुआ है- "चुनावी अधिकारी अपनी विवेक बुद्धि से निर्णय करे।" यहाँ कानूनी बहस की बात नही थी। केवल सबको अपनी बात रखने के लिए मौका देना काफी था।

लेकिन दूसरे उम्मीदवारों ने कहा- यह दावा गलत है कि मामासाहेब अपने अध्यक्ष पद को "एन्जॉय" नही कर रहे। क्योंकि इनका टेलिफोन बिल, मेडिकल बिल भी कॉर्पोरेशन देती है और ये कार्पोरेशन की कार भी इस्तेमाल करते हैं- आप चाहें तो लॉग बुक मंगवा कर देखें। वैसे अध्यक्ष के नाते उनको ये हक है। लेकिन फिर वे "इन्जाईंग" की व्याख्या में आ जायेंगे।

मैंने अपना निर्णय एक दिन के लिये रोक दिया और कार्पोरेशन को आदेश भेजा कि सारे कागजात मेरे सामने हाजिर करें।

अगले दिन क्या निर्णय होगा यह भी तय था, केवल कार्पोरेशन के रेकॉर्ड मेरे सामने आने की देर थी। दूसरे दिन निर्णय सुनने के लिए बड़ी भीड़ इकट्ठी हुई। कागजपत्रों ने बता दिया कि मामासाहेब उन सारी सुविधाओं का लाभ उठाते थे जो अध्यक्ष के नाते उन्हें मिली हुई थीं। अर्थात एन्जॉय शब्द उन पर लागू हो रहा था। उनका नामांकन रद्द हो गया। उनके डमी कॅन्डिडेट लांडगे का नामांकन स्वीकृत हो गया। लेकिन चुनाव में कांग्रेस वह सीट हार गई।

मामासाहेब ने हाईकोर्ट में अपील भी की लेकिन हाईकार्ट ने मेरे निर्णय में कोई परिवर्तन करने से मना कर दिया। बाद में एक बार मामासाहब ने अपने मन की खुदबुद मेरे सामने कह डाली- आखिर वह समरी इन्क्वायरी थी, आप कागजपत्र देखने से मना करतीं तो मेरा नामांकन स्वीकृत हो जाता और मैं जीत जाता। आपने जानबूझकर मुझे हराया। मैंने कहा- समरी इन्क्वायरी का अर्थ यह नही कि कुछ भी मत देखो- उसका अर्थ यही है कि अपनी तसल्ली लायक कागज

मिल जायें तो बाकी निर्णय अपने विवेक से लो। आखिर आप भी अण्णासाहब की तरह पहले ही पदत्याद करते तो यह नौबत नही आती। खैर! मामासाहब तो पिंपरी चिंचवड कार्पोरेशन के अध्यक्ष बने रहे लेकिन पुणे के कई दिग्गज कांग्रेसी नेता मुझसे रूष्ट बने रहे कई वर्षों तक।

इन विधानसभा चुनावों में भी कई राज्यों में कांग्रेस हारी थी। सन् अस्सी के आते आते आयाराम, गयाराम प्रथा की शुरूआत हो गई। प्रशासनिक अधिकारी और राजकीय नेताओं के बीच भ्रष्टाचार के मुद्दे पर एकी और गुटबाजी होने लगी। ऐसे में कानून, नियम या नैतिकता मानने वाले अधिकारी उनकी आँखों में खटकने लगे। ये सारे अधिकारी एक एक कर अकेले पडते गए और उनकी पकड कमजोर पड़ती गई। संतोष की बात इतनी रह गई कि ज्यूनियर अधिकारी और जनमानस के बीच वे रोल मॉडेल बने रहे। इसलिये यह उम्मीद खतम नही हुई कि कोई ऐसा भी अधिकारी होगा जो अपने आदर्शों के लिए प्रतिबद्ध रहते हुए भी अकेला नही पडेगा और प्रशासन में अपनी कारगुजारी से कुछ अच्छा कर लेगा।

इन चुनावों के जरा सा पहले हवेली तहसिल में एक नये तहसिलदार नियुक्त हुए थे श्री शेटे। इसी कार्यालय को चुनावी अधिकारी का कार्यालय घोषित किया था और मुझे यहीं बैठकर रिटर्निंग आफिसर के सारे काम करने थे। शेटे मेरे असिस्टंट रिटर्निंग ऑफिसर भी थे। पहले दिन की ही घटना है। खाली समय

में काम करने के लिये मैं कई फाइलें साथ ले गई थी और उन्हें देख रही थी। कुछ नामांकन पत्र भरे गए। तीन बजे उस दिन के नामांकन का समय खतम हुआ। उसके बाद नामांकनों की लिस्ट नोटिस बोर्ड पर लगाना और कई तरह के कागजात कलेक्टर के पास भिजवाने थे। तीन बजकर दो मिनट पर श्री शेटे ने वे सारे कागज हस्ताक्षर के लिए मेरे सामने रख दिये। मैंने आश्चर्य से उन्हें देखा- यहाँ का शिरस्तेदार इतना कार्यक्षम कब से हो गया? पहली बार फाइलों से सर उठाकर मैंने आस पास का जायजा लिया। शेटे की टेबुल मेरे बगल में ही थी। वहाँ उन्होंने कुछ देर पहले एक टाइपराइटर मँगवा कर रख लिया था और सारे फॉर्म्स खुद ही टाइप कर तैयार रखे थे। इधर तीन बजे, उधर उनके कागजात तैयार। मुझसे कहा मैडम, कई बार ये क्लर्क वर्क बड़े स्लो होते हैं। मैं अभी नया हूँ। कौन कितनी जिम्मेदारी से काम करता है यह मुझे अभी मालूम नही है। चुनावी कामों में रिस्क लेना ठीक नही है। सो कर दिया मैंने सारा काम। देर भी कितनी लगती है? श्री शेटे जीप चलाने से लेकर खसरे के कागजात भरना, टाइपिंग इत्यादि सारे काम जानते थे। मेरे अत्यंत कार्यकुशन अधिकारियों में से वे एक थे।

किसी को भी कुशलता से काम करते हुए देखना एक बडी सुखद बात होती है। उतनी ही सुखद जैसे किसी अच्छे गायक को सुनना या अच्छे क्रिकेटर की बल्लेबाजी देखना। ऐसा ही एक नमूना और देखने को मिला। चुनावों के लिए हमने कुछ लोग डेलीवेजेस पर लगाए थे। चुनाव समाप्त होते ही उन्हें भी हटा देना था। वैसे इधर मेरे व कलेक्टर के कार्यालय मं कई वेकेन्सियाँ थी लेकिन उन्हें भरने के लिए समय रहते कोई वार्षिक प्लानिंग इत्यादि करने का रिवाज नही था। कॅरियर प्लानिंग कुछ भी नही था। आज भी नही है। मुझे एक पत्र मिला। अत्यंत सुन्दर हस्ताक्षर में और बिल्कुल सही मुद्दे उठाते हुए पत्र लेखक ने लिखा था कि चुनावी दिनों में उसने कितनी कार्यक्षमता से कौन कौन काम किए थे। आगे भी उसे कंटिन्यू करने की विनति की थी। उस पत्र का सुंदर मोतिया जैसा हस्ताक्षर, सही मुद्दे, पत्र की सहज सरल भाषा इत्यादि ने मुझे बडा प्रभावित किया। उसका काम व कार्यकुशलता भी मैं देख चुकी थी। चुनावी व्यस्तता में ही समय निकालकर मैंने कलेक्टर ऑफिस से अपनी सारी वेकेन्सी भरने की अनुमति ली और तीन अच्दे क्लर्कों को कायम कर लिया। यह पत्र लेखक आज कलेक्टर कार्यालय में क्लास वन अधिकारी के पद पर पहुँचा हुआ है।

मेरे पांच तहसिलों में एक भी मावल तहसिल जिसका मुख्यालय वडगांव में है। लोणावला और खंडाला जैसे टूरिस्ट केंद्र इसी तहसिल में हैं। सन् १८११ में वडगांव में ही अंग्रेजों की

लड़ाई मराठों से हुई जिसमें अंग्रेज जीत गए और मराठाशाही का अन्त हो गया। दूसरे बाजीराब पेशवा के अंग्रजो ने कैद कर बिठूर भी दिया जहाँ से बाद में उनके पुत्र नानासाहेब पेशवा, लक्ष्मीबाई आदि ने फिर १८५० में अग्रेजों से लडाइयाँ लड़ी। वडगाँव की लडाई में अंग्रेज कप्तान जेम्स स्टुअर्ट मारा गया और उसकी कबर वहीं सैनिक छावनी में बनी जिसे बाद में अंग्रेजों ने तहसिल कार्यालय बना लिया। सो आज भी माना जाता है कि वडगांव कचहरी में जेम्स स्टुअर्ट का भूत रहता है। यह भी माना जाता रहा कि यदि वहाँ से कोई गलत फैसला सुनाया जाता है तो रात में स्टुअर्ट का भूत आकर उस व्यक्ति को जोरदार थप्पड़ मारता है। ये तो बडी अच्छी बात है। सही फैसले किए जाएं, ये लोगों के हक में होगा, सो उस भूत के तो आभार माने जाने चाहिये। लेकिन भूतों से जो मात खा जाये वह महसूल अधिकारी ही क्या? भूत को चकमा देने के लिये तहसिलदार के कुर्सी की जगह थोडी सी हटा दी। कबर के चारों ओर दीवार बनाकर एक संकरा सा कमना बना दिया। भूत का बता दिया कि अरे बाबा, तुम यहाँ रहना तुम्हारे लिए हर गुरूवार को अगरबत्ती जला देंगे। इस कमरे के अंदर आकर कोई गलत फैसला सुनाए तो उसे थप्पड़ मारना। मेरे कार्यकाल में भी मैंने ऐसे किस्से सुने कि फलाने को तहसिलदार का फैसला पसंद नही आया तो उसने चुनौती दे डाली कि

हिम्मत हो तो स्टुअर्ट के कमरे के अंदर खड़े होकर यह फैसला सुनाओ। मेरे प्रशिक्षण काल में एक महीने तक मुझे मावल के तहसिलदार के पोस्ट पर रखा गया था। जब मैंने आग्रह किया कि मैं सारा कोर्ट वर्क स्टुअर्ट के कमरे से करूँगी। लेकिन उस कार्यालय के लोग यह जोखिम लेना नही चाहते थे कि भावी प्रांतसाहब से कोई गलती हो और थप्पड़ खानी पडे। हाल में वडगांव कचहरी को नए सिरे से बांधा गया जिसमें स्टुअर्ट की कबर और कमरा तो अपनी जगह ही रहे लेकिन तहसिलदार की कमरा बिल्डिंग के दूसरे हिस्से में चला गया है। बेचारा भूत!

वडगांव के थेड़ा आगे कामशेत गांव है और उससे आगे लोनावला। एक जमाने से कामशेत इस इलाके का ट्रेड सेंटर रहा है। पुणे मुंबई हायवे पहले इसी गांव से गुजरता था। संकरे रास्ते के दोनों ओर सोना चांदी की चिक्की मिठाइयों की तथा चावल की दुकानें। ट्रैफिक का यह हाल कि गाड़ी दो मिनट चले तो दस मिनट रूके। फिर निर्णय हुआ कामशेत बाय पास बनाने का। व्यापारियों ने उसका जमकर विरोध किया पुणे मुंबई हायवे पर रात दिन ट्रैफिक चलता था और एक तरह से दुकानों की सुरक्षा व चौकसी अपने आप हो जाती थी। बायपास बना तो उनकी दुकानों की चौकसी के लिए लोग रखने पडेंगे। लेकिन रास्ता चौडा करने के लिए अपनी दुकान पीछा हटाने को कोई तैयार नही। ऐसे ऐसे भी तर्क- इन्हें वितर्क कहना ही ठीक रहेगा। खैर बायपास बनना तय हुआ। वह रास्ता गांव के पश्चिम की पहाड़ी में बनना था। पहाडी के ऊपर एक दर्गा था, उसे हटाना पडता। दर्गे में हिन्दु मुसलमान दोनों जाते थे। सो क्या किसी की धर्म-भावना को ठेस लगेगी? सब डिविजनल मॅजिस्ट्रेट के नाते यह एन्क्वायी मैंने की। गांव में दोनों जमानों में एका था सो कोई समस्या नही उठी। कामशेत बाइपास बना। उसके बाद तो पुणे मुंबई राजमार्ग पर धडाधड सुधार होते गए और अब पुणे से मुंबई कार यात्रा केवल तीन घंटों में संपन्न हो जाती है।

कामशेत के पास ही बेहेरगांव है जिसकी उंची पहाडी पर एकवीरा देवी का मंदिर है। यह काफी जागृत माना जाता है। प्रशिक्षणकाल में व्हिलेज इन्सपेक्शन सीखने बेहरेगांव गई तो मंदिर भी गई। पुजारी ने वहाँ का इतिहास इत्यादि बताया। मंदिर चार पांच सौ वर्ष पुराना था और किसी जमाने में वहाँ भैंसा बली देने की प्रथा थी। ब्रिटिश राज में बली चढाने का मान(?) प्रांत साहेब का होता था। किसी ने मुझे भावी प्रांतसाहब जानकर पूछा- आप औरत जात। यदि उस जमाने में प्रांतसाहेब होती तो क्या तलवार के एक झटके से भैंसे का सर काट पातीं? मैंने मन ही मन मैंने सोचा कि चलो आज यह प्रथा नही है तो मैं एक मुश्किल से बच गई। लेकिन यदि आज यह प्रथा होती तो जरूर अपने सबडिविजनल मॅजिस्ट्रेट के अधिकार का उपयोग करते हुए यह प्रथा ही बंद करवा देती। कभी किसी उद्घाटन आदि के दौरान जब मुझसे नारियल फोडने कहा जाता है

(महाराष्ट्र में यह प्रचलन अत्यधिक है) तो मुझे एकवीरा मंदिर याद आता है तो लगता है कि शायद इनमें से किसी के मन में प्रश्न होगा- क्या ये एक झटके में नारियल फोड लेंगी? कई बार मेरे इन्टरव्यू इत्यादि के दौरान मुझसे पूछा जाता है- एक औरत को ऐसे पद पर अपना बॉस कबूल करते हुए लोगों ने क्या प्रतिक्रिया दर्शाई। मैं बहुत याद करने की कोशिश करती हूँ- क्या कभी मैंने किसी के मन में आनाकानी पाई है? उत्तर मिलता है- नही। सारे पटवारी, तहसिलदार, ग्रामीण जनता यहाँ तक कि कलीग और सिनियर्स के मन में भी दुविधा के क्षण मैंने नही देखे- बस वह एकवीरा देवी के सामने पूछा गया प्रश्न ही बच जाता है। और मैं सोचती हूँ कि जो पूरा का पूरा गाँव एकवीरा देवी की व्याघ्रवाहिनी प्रमिमा को रोज देखता है, पूजता है, उसे अपने गांव का रखवालदार मानता है, उसके संरक्षण में अपने आपको सुरक्षित महसूस करता है, उस गांव में यह प्रश्न क्यों उठा? इसका एक ही उत्तर मुझे जान पड़ता है। जिस किसी ने मेरा काम देखा, और मेरी कार्यक्षमता का कायल हो गया होगा उसके मन में यह प्रश्नचिन्ह नही उठा होगा। आज इतने वर्षो बाद इस प्रश्न पर मुझे एक कौतुक करना पड़ता है। किसी ने यह नही कहा कि आप औरत जात हैं, इसलिये प्रांतसाहब भी हों, तो भी आपको यह मान हम नही देते।

ऐसी ही घटना एक बार औरंगाबाद में घटी। वहाँ वकफ बोर्ड किसी कारण बरखास्त था और कलेक्टर को चेअरमैन नियुक्त किया गया था। कलेक्टर मुझे भी ले गए। वहाँ मस्जिद के अंदर मेरे जाने पर किसी ने ऐतराज नही किया- केवल इतना कहा- हाँ अब औरतें भी कलेक्टरी करने लगीं हैं- क्या पता ये ही हमारे यहाँ कलेक्टर लग जाय। ऐसे ही कई वर्षों बाद जब मैं नाशिक में कमिशनर बनी तब की बात है। बगल के त्र्यंबकेश्वर गांव में सत निवृत्तिनाथ की समाधि है जिस पर हर वर्ष अभिषेक समारोह होता है।

उसके लिये मुझे बुलाया गया और मेरे हाथों विधान संपन्न हुआ। इन्हीं के छोटे भाई संत ज्ञानेश्वर की समाधी पुणे के पास आलंदी में है। इन दोनों की दुलारी छोटी बहन संत मुक्ताबाई स्वयं एक विदुषी और साधक थी। यहाँ तक कि एक बार मुक्ताबाई को ही ज्ञानेश्वर को उपदेश करना पडा- वे करीब पचहत्तर दोहे ताटीचे अभंग नाम से मराठी में विख्यात हैं। ऐसे ज्ञानेश्वर की समाधी पर स्त्रियों का जाना वर्जित था। लेकिन पांच वर्ष पूर्व मराठी वार्षिक साहित्य संमेलन की अध्यक्ष चुनी गई प्रसिद्ध मराठी कवयित्री श्रीमती शांता शेलके और संयोगवश साहित्य संमेलन के आमंत्रक बने आलंदी निवासी। और बस, वहाँ एकत्रित महिलाएँ ज्ञानेश्वर समाधी पर गई- साहित्य चर्चा, भजन कीर्तन इत्यादि हुए। आलंदी देवस्थान के पुजारियों ने जरा भी विरोध नही किया। तब से वह प्रथा समाप्त हो गई। इसके विपरीत सुदूर दखिण के सबरीमलै तीर्थस्थान के अय्यप्पा मंदिर में भी स्त्री प्रवेश वर्जित है। वहाँ हाल में ही एक महिला अधिकारी जिला कलेक्टर बनकर आई। उसने अय्यप्पा प्रवेश निषेध को ठुकराया तो इस पर काफी शोरशराबा हुआ और उसकी ट्रान्स्फर हो गई।

इन घटनाओं का अॅनॅलिसिस मैं करती हूँ तो एक पॉवर प्ले का मुद्दा दिमाग में आता है। एक सामान्य आदमी का दृष्टिकोण भी आज विस्तृत हो चला है । वह समझता है कि स्त्री निषेध वाली ये कई प्रथाएँ अब अप्रासंगिक हैं। लेकिन जो पुजारी वर्ग है वह सोचता है कि नकारने का मेरा हक है उसका क्या होगा? मै जितना जिसको नकार सकूँ, रोक सकूँ, उतना ही मेरा बडप्पन है। सो आज औरतों को रोको, कल दलितों को रोको, परसों और किसी को रोको इत्यादि। यह पॉवर प्ले ठीक उसी तरह है जैसे हर सरकारी दफ्तर में होता है। सरकारी अफसर या कर्मचारी अपना बडप्पन कैसे मापते हैं? प्रत्येक दिन के अंत में मन ही मन और प्रगट चर्चा में भी हिसाब लगाया जाता है कि आज मैंने कैसे, कितनों को रोक दिया। कितनी फाइलें ऑब्जेक्शन लगाकर लौटा दीं। किस बडे आदमी की दाल को भी नही गलने दिया। यदि यह फाईल ठीक से नही देखी होती, उसे रोका न होता तो कितना गजब हो जाता। इत्यादि।

क्या खुद मेरे दफ्तर में ऐसा नही होता? होता होगा। फिर मैं प्रयत्नपूर्वक उन मुद्दों को ढूँढकर उनकी सिस्टम को कुछ सुधारने का प्रयास करती हूँ ताकि कम से कम लोगों को या फाइलों को रोकना पड़े।

मेरी ट्रेनिंग के दौरान कलेक्टर थे श्री सुब्रहमण्यम्। एक बार मैं उनके दफ्तर में बैठी थी। वे डाक देख रहे थे। एक अर्जी निकालकर मुझे पढने के लिए दी। फिर पूछा- इस अर्जी की सबसे महत्वपूर्ण बात क्या है जो याद रखनी चाहिए? मैंने कहा- इस प्रार्थी की कोई जमीन सरकार ने अधिग्रहण की है ओर उचित मुआवजा नही दिया है, यही मैं याद रखूँगी। वे हंसकर बोले- नो, नो। यह याद रखा करो कि इस आदमी का नाम क्या था, संभव हुआ तो गांव भी। देखो, हमारे लोग इस अर्जी को चार महीने वैसे ही रख लेंगे। कुछ नही करेंगे। यह आदमी मुझसे मिलने आयगा। जब मैं कहूँगा, हाँ हाँ तुम्हारा नाम, गांव यह है, मैंने तुम्हारी अर्जी देखी है, तो उसे तसल्ली होगी कि चलो काम नही भी हुआ तो क्या? मेरा नाम तो साहब ने याद रखा हुआ है। मैं अचकचा गई। मेरे लिये यह महा कठिन बात है कि मैं किसी का चेहरा या नाम याद रख सकूँ। उनकी बात की प्रचीती भी मैने देखी। दौरे पर कई लोग उनसे मिलने आते तब मैं देखती थी कि उन्हे याद रहता था कि कौन पहले भी उनसे मिल चुका है और उनके बताने पर तत्काल उस व्यक्ति का चेहरा खिल जाता है। यह कला मुझे आजतक नही आई। लेकिन एक संतोष यह है कि मुझे काम के डिटेल्स याद रह जाते हैं। अतः जबतक कोई आदमी कहे मेरा नाम अमुक, गांव अमुक, तब तक मेरा चेहरा एक प्रश्न चिह्न लिये होदा। लेतिन जब वह कहेगा मेरे पड़ोसी से जमीन की बाउंड्री के झगड़े की बाबत फाइल चल रही है, तो मुझे याद आयेगा हाँ और इसने बांध पर लगे दो खैर के पेड़ो की भी तकरार लिखी थी। तब जाकर उसे तसल्ली होती है कि अच्छा, इन्हे काम याद है।

मेरी इस याददाश्त का फायदा मैं ऐसे उठाती हूँ कि मैं क्लर्क से कह सकती हूँ- देखो बाउंड्री पर लगे पेड़ो के झगडे की बाबत सात अर्जियाँ आ चुकी हैं, जरा सबको एक साथ ले आओ और देखो कि क्या एक ही फार्मूला लग सकता है, यदि हाँ तो वही जनरल सकूर्यलर बनाकर सब पटवारियों को भेज देंगे। फिर हमारे पास अर्जियाँ कम हो जाएंगी।

मैं प्रांतसाहब थी जब महाराष्ट्र में प्रायवेट फॉरेस्ट ॲक्विझिशन ॲक्ट लागू हुआ। सहयाद्रि के कठिन पाषाणों के कारण(ग्रेनाइट) बडे बडे ऐसे पठार हैं जिनपर खेती नहीं हो सकती। वहाँ होगी केवल घास या जंगल। कई ऐसे लोग थे जो बड़े बड़े जंगलों के मालिक थे और वे इस बात का ध्यान रखते कि जंगल अच्छी तरह संरक्षित रहे। कुछ लोग उन्हें अंधाधुंध कटवाते भी है। इसी को रोकने के लिए यह कानून बना। मैंने पाया कि मेरे चार तहसिलों में इसका बडा दुष्प्रभाव पडने वाला था। यहाँ प्रायः सारी जमीन चरवाहे और गंडेरियों की थी जो खेती नही कर सकते थे- केवल गाय या भेड बकरियाँ पालते थे। उनकी जमीन छिनी जाने का डर था। ऐसे समय राब जमीन के लिये दो एकर छूट दी जा सकती थी। महाराष्ट्र के गांवों में एक बार फसल काटने के बाद जमीन में बचे खुचे झाड झंखाड, जडें आदि हटाने के लिए उसमें आग जला देते है और वह जमीन एक साल के लिये छोड देते हैं ताकि उसमें कुछ मिट्टी जमा हो सके और फसल उग सके। सो राब के लिए छोड़ी हुई दो एकड़ जमीर उसे वापस दी जा सकती थी। ऐसी कई सौ समरी इन्क्वायरी करके मैंने राब जमीनों में ऑक्विझिशन रोक दिया। उधर दूसरे डिप्टी कलेक्टर नियुक्त थे अधिक से अधिक जमीन सरकार के कब्जे में लेने के लिए। वे हर हफ्ते मेरे साथ मीटींग करते ताकि जल्दी से जल्दी जमीनों का ऑक्बिझिशन पूरा हो। एक बार रेवेन्यू सेक्रेटरी आए तो मैंने उनसे निवेदन किया- सर, यह ॲक्ट मुझे गलत और बेमानी लगता है। आज इतनी जमीन प्राइवेट फॉरेस्ट की जमीन आप सरकारी कब्जे में ले रहे हैं। लेकिन क्या गॅरंटी है कि आने वाले वर्षों में सरकार इनका नियोजन ठीक तरह से कर पायेगी? वे एकदम चिढ गए। इस ॲक्ट की ड्राफ्टिंग उन्होंने ही की थी। उन्होंने मेरी बात पर कोई ध्यान नही दिया। आज इतने वर्षों के बाद भी मुझे नही लगता कि इस ॲक्ट में बनों का अधिग्रहण कर लेने के बाद वास्तव में वन सम्पत्ति की स्थिति में कोई बडे अच्छे परिणाम हाथ आए हों।

सत्तर के दशक में महाराष्ट्र में कई सहकारी चीनी मिलें लगीं। इलाके के नेताओं ने इसमें जमकर नेतागिरी और कमाई की। सहकारी क्षेत्र को बढावा देने के लिये सरकार ने इन कारखानों को भारी वित्तीय सहायता दी। महाराष्ट्र में सहकारिता क्षेत्र का जो अपना रौब और दबदबा है उसमें प्रमुख हैं सहकारी सूत कारखाने, चीनी कारखाने और दूध फेडरेशन्स!

चीनी कारखाने धडधड निकलने लगे। उन किसानों को मेम्बर बनाया जाने लगा जो गन्ना उगाते थे। कारखाना लगाते समय कम से कम कितने मेंबर चाहियें, और गन्ने की खेती का कम से कम कितना क्षेत्र चाहिये, यह तय था। २००० टन से छोटा कारखाना लाभदायी नही हो सकता था। अर्थात् भारी मात्रा में गन्ना चीनी कारखाने तक पहुँचना जरूरी है- चाहे वह गन्ना मेम्बरों का हो या नॉन मेंबरो का।

इससे पहले पूरे महाराष्ट्र में और खासकर पुणे जिले के गांव गांव में गन्ने के मौसम में गुड बनाया जाता था। जनवरी से मार्च तक हर गांव में बडे बडे कडाहों में गन्ने का रस उबालकर किसान गुड बनाते थे। कोल्हापूर जिले का गुड आज भी अच्छा खासा एक्सपोर्ट मार्केट काबिज किये हुए है। गुड के आगे थोडी और प्रोसेसिंग करके चीनी भी बनाते थे जो कारखानों में बनने वाली चीनी जितनी रिफाइंड नहीं होती थी और बडे बडे ढेलों के रूप में बनती थी- इसे महाराष्ट्र में खांडसरी कहा जाता है। लेकिन यह माना जाता है कि गन्ने से गुड बनाना कम फायदे का है, चीनी बनाने में ज्यादा आर्थिक एफिशिअन्सी है। यह सेंट्रलाइज्ड पॅटर्न बनाम डिसेंट्रलाइज्ड पॅटनर् का झगडा है। उधर कई स्वास्थ्य विशेषज्ञ मानते थे कि गुड बनाने की प्रक्रिया में स्वच्छता का कोई ध्यान नहीं रखा जाता, इसलिये गुड के कहाडों पर रोक लगाना आवश्यक है। इन दो के साथ अब वे नेतागण भी आगे आए जो चीनी मिलों में चेअरमन बने थे। इन बसके दबाव में सरकार ने गुड बनाने पर रोक लगा दी। किसान अब गुड नहीं बना सकता था। उस पर बंधन आ गया कि वह अपना गन्ना केवल चीनी कारखाने को ही बेच सकता है। प्रांतसाहब के कामों में एक काम यह भी जुड गया कि यदि कोई किसान गुड बना रहा है तो उसका गन्ना, गुड आदि जप्त किया जाय और उस पर कारवाई तथा दंड भी हो। यह नियम भी मुझे हमेशा अन्यायकारक ही लगा। तुर्रा यह कि नियम कहता था कि यह नियम किसान के हित में है क्यों कि कारखाने को गन्ना बेचने से अधिक दाम मिलता है। इसलिये यह जनहितकारी नियम है। मैं कहती थी कि यदि यह किसान के फायदे का सौदा है तो वह अपने आप इसे करेगा इसके लिये जोर जुर्माना क्यों? किसान को अपनी मर्जी खुद तय करने का हक होना चाहिये। अतः मेरे तहसिलदारों को हिदायत थी कि गुड के कडाहे रोकने भी हों तो भी न कोई दंड लगाया जायगा, न कडाहे उलट कर बनने वाले गुड का नुकसान किया जायगा। केवल गन्ना कारखाने तक भेजने की कारवाई होगी।

ऐसे कई नियम मिनाये जा सकते हैं जिनका पालन छोटे अधिकारियों को करना पडता है। उनका सैद्धान्तिक और नैतिक आधार क्या है यह पूछने का, या यदि अपना कोई अन्य मत है तो उसे व्यक्त करने का कोई फोरम, कोई प्लॅटफॉर्म सरकारी प्रणाली में नही है। नैतिक बातों को तो छोड ही दें, जो नियम या योजना अच्छी है, उसके बाबत भी, उसकी अनुपालन की कठिनाइयाँ जानने के लिये वरिष्ठ और कनिष्ठ अधिकारियों के वैचारिक आदान-प्रदान का कोई सिलसिला शासन-प्रणाली में नही है। कहीं कहीं है तो उसे अधिक कारगर बनाने की जरूरत है। यह करने में देश की ब्यूरो सी क्रमशः पीछे पडती गई और मामले सुप्रीम कोर्ट के निर्देश के लिये वहाँ ले जाये जाने लगे । इस तरह प्रशासन का यह अंग दिन पर दिन कमजोर पडता जा रहा है।

यही हाल था जमीन अधिग्रहण कानून की बाबत। सरकारी कामों के लिये कोई भी अधिगृहित करने का कानून ब्रिटिश राज में था जो आज भी चला आ रहा है यह एक सेंट्रल गवर्नमेंट ॲक्ट है जो देशभर में लागू है। मैं जब प्रशिक्षण के लिए आई तब पुणे में चौदह मंझले और बडे सिंचाई प्रकल्पों पर काम चल रहा था जिसके लिए जमीनें अधिगृहित हो रही थीं। एक पुणे जिले में अठारह लॅण्ड ॲक्विझिशन अफसर थे जब कि सामान्यतः हर जिले में एक या दो अधिकारी होते हैं।

महाराष्ट्र एक प्रगतिशील राज्य है जिसने कई अच्छी प्रशासनिक पहलें की हैं। पुनर्वसन का कानून भी सबसे पहले महाराष्ट्र ने ही बनाया (वरना आज भी कई राज्यों में पुनर्वसन का कानून नही है । सिंचाई प्रकल्पों में जिनकी सारी जमीन अधिगृहित हो गई या जलाशय के अंदर डूब गई उन्हें इस पुनर्वसन कानून के अंतर्गत मुआवजा, दूसरी जमीन, सरकारी नौकरी आदि प्रावधान थे। यह कानून तब नया ही था। जिनका पुनर्वास होना है, ऐसे लोगों की मीटींग कराई जाती। जिले में एक पुनर्वास अधिकारी भी था जो ऐसी मीटींगों के लिये अधिकारी पर निर्भर था। मैंने उनके साथ कई मीटींगों में भाग लिया। तब मैं कहती कि केवल नौकरी देने प्रावधान करने से कुछ नहीं होगा- इनके लिए नौकरी में आरक्षण करवाइये। अगले पांच दस वर्षों में कानून में यह सुधार भी हुआ- और भी कई हुए। लेकिन आज इस पूरे अधिग्रहण बनाम पुनर्वास के कानूनों को मूल सिरे से पढने की और सुधारने की आवश्यकता है। यदि जमीन अधिग्रहण से विकास हो रहा है तो विकास में उनका भी बडा हिस्सा होना चाहिए जिन्हें आपके अधिग्रहण कानून ने बेघर बेगांव कर दिया- जिनके गांव के गांव और जंगल के जंगल पानी में डुबा दिया। उनकी जीवन शैली को समझे बगैर आपने अपने स्टॅण्डर्डों से उनका पुनर्वास तो करना चाहा- पर विकास से जो समृद्धि आंकी उसमें उन्हें उतना कितना हिस्सा दिया?

पुनर्वास कानून की सबसे बडी न्यूनता तो यह है कि जो व्यक्ति समृद्धि के जिस किसी धरातल पर है, पहले तो आप उसे वहाँ से नीचे बहुत नीचे धकेल देते हैं। फिर उसे वहाँ से धीरे धीरे उठाकर वापस उसके पुराने धरातल पर लाने का प्रयास करते हैं- न जाने कितने वर्षों के बाद। कोयना प्रकल्प में पचास के दशक में उजडे लोगों का पुनर्वास आज पचास वर्षों के बाद भी पूरा नही हुआ है- यह है प्रगति का वेग महाराष्ट्र जैसे प्रगतिशील राज्य में। फिर अन्य राज्यों में क्या परिस्थिति होगी?

अधिग्रहण कानून में एक और मुद्दा है। किसी के पांच एकड जमीन में से सडक बनाने के लिए आधी एकड जमीन अधिगृहित करना और दो सौ गांवों और बीस तीस हजार एकड जंगलों में पल बढ रहे पचास हजार से भी अधिक लोगों पर अधिग्रहण और पुनर्वास कानून लगाना दो अलग अलग बातें हैं। लेकिन इसे न समझते हुए सब पर एक ही कानून लगाया जाता है।

सरकारी नौकरी का प्रावधान तो है लेकिन नौकरी मिलेगी केवल क्लास फोर की यानी चपरासी की। क्यों नहीं उनके लिए आई टी आय जैसे ट्रेनिंग खोले जाते? यह और ऐसे कई सवाल मेरे दिमाग में उठते थे- उनसे मैंने काफी कुछ सीखा। मुझे हर बात की तह तक पहुँच कर जाँच करने की आदत पडती गई। लेकिन प्रशासन तंत्र में सुधार? वह अब भी दूर की बात है।

मैं प्रांतसाहेब थी तब पुणे के नजदीक ईगल फलास्क की फॅक्टरी में प्रिंस आगाखान की व्हिजिट तय हुई। प्रिस आगाखान खोजा जाति के सर्वोच्च धर्मगुरू हैं और उनकी व्हिजिट व्ही आय पी व्हिजिट थी। खोजा जाति हमारे देश की उन जातियों में से है जिनकी कार्यक्षमता और व्यावसायिक सच्चाई की मैं हमेशा कायल रही हूँ। खोजा बोहरी या पारसी कम्यूनिटी की जनसंख्या अत्यल्प है और वे सारे प्रायः व्यापार करने वाले हैं लेकिन उनके व्यापार में एक गजब की सच्चाई और अदब है जिससे हम काफी कुछ सीख सकते हैं। ईगल फॅक्टरी में मैं पहले भी जा चुकी थी। लेकिन इस व्हिजिट के कारण मुझे खोजाओं के खानपान, रस्मोरिवाज आदि भी करीब से देखने को मिले। खासकर प्रिस के व्यक्तित्व ने मुझे काफी प्रभावित किया।

पुणे जिला पहाडियों और वादियों का जिला है। जिसमें जगह जगह पहाडों को काटकर रास्ते बनाये गये हैं। इन्हे घाट-रास्ता कहते हैं। एक दोपहर को मैं अपना कार्यालयीन काम कर रही थी कि खबर आई कि दिवा घाट के एक घाट रास्ते पर बस पहाड से नीची गिरी है। मैं तुरंत निकलकर वहाँ पहुँची। उपर से ही देखा जा सकता था कि बस के चक्के और कई हिस्से टूटकर अलग गिर चुके हैं। सभी प्रवासी थोडे अधिक जखमी हैं। फिर भी उन्हें अपने सामान की चिंता होना स्वाभाविक था। मदद के लिये अधिक लोग नही थे। चार आदमी एक स्ट्रेचर पर किसी को लिये ऊपर चढ रहे थे।

मैंने बचपन में गर्ल गाइड, होम गार्डस् जैसी संस्थाओं में प्रशिक्षण पूरा किया था। मेरे अंदर का "बालवीर" एकदम जाग पडा और मैं पहाडी पगडंडी से नीचे उतरने लगी। मेरे साथ के सिपाही,

पटवारी और मंडल निरीक्षक को थोडी देर लगी समझने में। लेकिन फिर वे भी दौडकर अतरते हुए मेंरे पास आए। मंडल अधिकारी वयोवृद्ध थे मुझसे कहा- आप ऊपर आ जाइये। गांव से मदद आ रही है, इन तक पहुँचाना हमारी जिम्मेदारी है। लेकिन फिलहाल कलेक्टर साहब को सूचना पहुँचाना आवश्यक है जो आप ही कर सकती हैं। मैंने पल दो पल उसे देखा। इस आदमी ने अपने पचीस तीस वर्ष इसी काम में लगाए होंगे। यह सही कह रहा है। प्रांत अधिकारी का मुख्य काम यह नही है कि कूद पडो- बल्कि यह है कि उचित निर्देश दे-देकर सबसे काम करवाओ। मै उपर आई। कलेक्टर से वायरलेस पर बात की। उन दिनों मोबाइल या एस टी डी जैसी सुविधाएं नही थीं। कलेक्टर ने पूछा- कितने जखमी होंगे, कब तक पुणे पहुँचेंगे, सबको संचेती हॉस्पिटल भेजा जाए वहाँ मैं अभी डॉक्टर संचेती से बात करता हूँ, तुम शाम साडे छः बजे तक वापस आकर मुझसे मिलो इत्यादि। फिर रात को हम दोनों संचेती हॉस्पिटल गए मरीजों को देखने। जो पांच व्यक्ति मर चुके थे उनके कम्पन्सेशन के लिए नोट बनाकर शासन के पास भेजी। जहाँ रास्ते के खराब मोड के कारण बस दुर्घटना हुई थी उसे सुधारने का निर्देश सडक विभाग को भेजा, जब कहीं जाकर उस दिन की डयूटी पूरी हुई।

इलेक्शन के दिन की एक घटना है। मैं पोलिंग बूथों पर घूम घूम कर मतदान कार्य को देख रही थी। देहू गांव के एक पोलिंग बूथ के बहुत करीब कांग्रेस और जनता दल दोनों के स्टॉल्स लगे थे और दो बार झटपें हो चुकी थीं। पटवारी ने दंगे की आशंका बताई।लेकिन वहाँ कुल पुलिस फोर्स थी तीन लाठीधारी कान्स्टेबल। मैं तुरंत वडगांव गई जहाँ तहसील कचहरी और साथ में पुलिस भी थी। इन्स्पेक्टर को पुलिस फोर्स लेकर देहू जाने को कहा तो वह हिचकिचाने लगा- कि फोर्स नही है। उसके थानेदार ने इधर उधर से लाकर किसी तरह पंद्रह कॉन्स्टेबुल एकत्रित किये तो कहने लगा- हमारे पास गाडी नही है। तब मैंने थानेदार और उसके पंद्रह जवानों को अपनी जीप में बिठाया और हम देहू पहुँचे। वहाँ दोनों बूथों में पत्थरबाजी और शराब की बोतलों से हमले शुरू हो चुके थे। ऐन वक्त पर हमारे थानेदार के आदमियों ने उन पर काबू किया और बडा दंगा होने से बच गया। थोडी देर बाद इलाके के एस डी पी ओ पाटील वहाँ पहुँचे और इन्स्पेक्टर को आडे हाथों लिया।

दो तीन दिन बाद कलेक्टर, मैं और एस पी इस घटना की विवेचना कर रहे थे। मेरा आग्रह था कि इन्स्पेक्टर पर कारवाई हो। एस पी ने अपने अफसर को बचाने की रौ में कहते गये- ऐसे मौके पर दंगे की जगह जाओ तो जान का खतरा होता है। आपको क्या गरज पडी थी कि अपनी जीप में डालकर पुलिस इन्स्पेक्टर को वहाँ ले जाती? पुलिस अधिकारी अपने आपको उस जगह से दूर ही रखना चाहता है और दंगा खतम होने के बाद वहाँ पहुँचने में ही बुद्धिमत्ता है। मैं अवाक् देखती रही। कलेक्टर और एस पी बहुत सीनियर थे। मैं कुछ कह नही पाई। बाद में दो तीन ज्यूनियर पुलिस अफसरों ने मुझसे कहा- आपकी कारवाई बिलकुल ठीक थी। इस एक घटना ने हमारे मन में आपके प्रति आदर पैदा किया है। ये दो अलग अलग नमूने थे हमारे पुलिस प्रशासन के।

करीब एक वर्ष पूर्व मैं एक आदर्श नमूना देख चुकी थी जब में प्रोबेशनर थी। तब एस पी दूसरे थे। तब इमर्जेंसी चल रही थी। सभी विरोधी पक्ष एक ही जनता दल के बॅनर तले एकत्रित थे। जनता दल के किसी नेता ने पुणे में एक भाषण दिया था। मुंबई से दबाव बन रहा था कि भाषण में उल्लेखित भाषा के आधार पर उन्हे गिरफ्तार किया जाय और उन पर एन एस ए (नॅशनल सिक्यूरिटी ॲक्ट) लगाया जाय। सामान्यतः पुलिस किसी को कैद करती है तो चौबीस घंटे में उसे न्यायालय में पेश करना पुलिस के लिये अनिवार्य है। लेकिन एन एस ए में यह मियाद छह महीने की थी। इंटरप्रिटेशन का पूरा हक कलेक्टर को था लेकिन एक्ट में यह निर्देश था कि कलेक्टर अपनी विवेकबुद्धि का उसी प्रकार इस्तेमाल करे जैसे कोई सुयोग्य जज करता है। साथ ही कलेक्टर का निर्णय ही अंतिम था। उस निर्णय में सरकार के वरिष्ठ अधिकारियों की कोई दखल संभव नही थी।

उस एक दिन में दसियों बार कलेक्टर पर ऊपर से दबाव आता रहा । तीन बार कलेक्टर और एस पी चर्चा के लिये बैठे। प्रोबेशनर होने के नाते मुझे भी विशेष अनुमति थी वहाँ बैठने की। ब्रिटीश काल से ही कलेक्टर को हर महीने एक सिक्रेट कोड भरा लिफाफा भेजा जाता है। उस महीने में आने

वाले गुप्त संदेश इस कोड में लिखित कुंजी की मदद से पढे जा सकते हैं। जरूरत न पडने पर कलेक्टर स्वयं हर महीने उस सील्ड लिफाफे को जला देता है। यह सब मैंने तब सीखा।

तीनों बार कलेक्टर और एस पी की बात लम्बी चली। उस वक्ता के भाषण का हर शब्द बार बार पढे गये। उन दिनों भाषण रिकार्ड करने की कोई सुविधा नही होती थी। किसी पुलिस की ही डयूटी लगती थी कि वह भाषण को जल्दी जल्दी लिखता रहे। भाषण मराठी में था- लिखने वाले की हंडराइटिंग भी मराठी स्टाइल की थी जबकि कलेक्टर और एस पी दोनों तमिलियन। शायद यह भी एक वजह थी मेरी उपस्थिती की। फिर भी दोनों ने भाषण का हर वाक्य कई कई बार पढा, हर शब्द पर चर्चा की और हर बार इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि "विवेकबुद्धि" से परखने पर वह भाषण NSA लगाने के लिये पर्याप्त नही था। मेरे लिए यह घटना एक अच्छा पाठ था कि कैसे एक विवेकशील अधिकारी अपनी सच्चाई पर अडिग रह सकता है। उन दिनों शेषन् या निर्वाचन आयोग आदि कुछ नही थे। कलेक्टर और एस पी दोनों को कभी भी ट्रान्सफर ऑर्डर आ सकता था। फिर भी दोनों दबाव में नही झुके।

मेरे पांचों तहसिलों में से सबसे निर्धन था वेल्हा तहसिल। वहाँ खाने रहने की सुविधाएँ शून्य थी। रेस्ट हाउस का खानसामा चाय बना देता था, वरना गाँव के बस स्टॅण्ड पर भी चाय बेचने वाला कोई नही था। वहाँ मुझे दिन का या रात का खाना लेना हो तो मैं मंगवाती थी केवल भाकरी- अर्थात जवार या बाजरे की मोटी रोटी, साथ में लहसन की चटनी और एक प्याज। सीजन हुआ तो एक ग्लास गन्ने का रस। वेल्हा के तहसिलदार भी रोज पुणे से आते जाते थे। लेकिन बाद में उनका तबादला हो गया और नए तहसिलदार आए कुलकर्णी जो परिवार समेत वेल्हा में ही रहने लगे। अब जब कभी मैं वहाँ जाती तो श्रीमती कुलकर्णी घर से ही मेरे लिये खाना भिजवाती- कभी खुद भी आकर बतियाने लगतीं। अक्सर से दुख जताती कि अब गांवों में कोई ब्राह्मण परिवार नही बस सकते। यह मेरे लिए नई बात थी। जहाँ मैं बडी हुई- उस बिहार में दसियों जातियाँ थी जो हर गांव में पाई जा सकती थीं। महाराष्ट्र के धरणगांव में मेरा जन्म हुआ था। वहाँ हम लोग हर गर्मी की छुट्टी में आया जाया करते थे और वहाँ ऐसी कोई समस्या नही थी। लेकिन मिसेज कुलकर्णी के बताने पर पहली बार मैंने ध्यान दिया कि वाकई पुणे जिले के गांवों में बाह्मण परिवार नही के बराबर थे। इसकी वजह थी सन् अडतालीस की वह संध्या जब एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण गोडसे ने गांधीजी का वध किया था। पश्चिम महाराष्ट्र में बिहार के गांवों की तरह दसियों जातियाँ नहीं हैं- एक ही मराठा जाती के सत्तर अस्सी प्रतिशत लोग होते हैं और बाकी सारी जातियाँ मिलकर बीस तीस प्रतिशत। जैसी ही गांधीवध हुआ, अहिंसा का संदेश देने वाले गांधी जी के अनुयायी कांग्रेसियों ने गांव गांव में ब्राहमणों के घर जला डाले- संपत्ति लूट ली और उन्हें गांव से बाहर खदेड दिया। उस सकते से पश्चिम महाराष्ट्र का मानस आज भी उभर नही पाया है। इस जातीगत राजनीति से मैं आजतक अज्ञानवश अछूती और परे थी। आगे भी इससे परे रहना हो तो मुझे गहरे अध्ययन और चिन्तन की आवश्यकता होगी, यह मैंने ठान लिया।

जैसे वेल्हा तहसिलदार का था, वही हाल वडगाँव तहसील का। पुणे से वडगांव पहुँचने के लिए हर दो घंटे में लोकल ट्रेन है जो एक घंटे में वहाँ पहुँचा देती है। इसलिए मावल में नियुक्त हर कर्मचारी वडगांव की बजाए पुणे में ही रहता था। उन दिनों सबके पास फोन या मोबाइल भी नही होते थे। कानून व्यवस्था की दृष्टि से यह व्यवस्था कभी भी विस्फोटक बन सकती थी। पुलिस अधिकारियों का भी प्रायः यही हाल था। लेकिन दूसरी तरफ से देखा जाए तो वडगांव में महसुली, जिला परिषद या पुलिस कर्मचारियों के रहने के लिए न ही पर्याप्त घर थे न अच्छे स्कूल और अस्पतालों की सुविधा। यही हाल प्रायः हर तहसील में था। अच्छे प्रशासन के लिए ऐसे कई मुद्दों की चर्चा होना आवश्यक होता है। लेकिन चर्चा व सामंजस्य का अभाव आज भी है।

उन दिनों ग्रामीण क्षेत्रों में बँक भी अत्यन्त कम थे। या तो स्टेट बँक या फिर जिला सहकारी बँक। कई तहसिल मुख्यालयों में भी बँक नहीं पहुँचे थे। सरकारी पैसों का सारा व्यवहार सब ट्रेझरी के मार्फत होता था जो तहसिलदार के नियंत्रण में कार्य करती। तहसिलदार हर महीने सबट्रेझरी का

इन्स्पेक्शन करता और प्रांत अफसर वर्ष में एक बार। उस दिन सारी रकम गिनी जाती और सारे रजिस्टर्स जाँचे जाते। प्रांतसाहब के मुख्यालय तथा अन्य तहसिल कार्यालयों से पांच सात व्यक्तियों की ड्यूटी लगाकर एक टीम बनाई जाती जो दो दिनों में इस काम को अंजाम देती थी। इस इन्सपेक्शन के दौरान मैंने पहली बार कौतुहल भरी नजरों से देखा कि किस प्रकार नोटों की गड्डियाँ नजाकत से थामकर उन्हें फटाफट गिनते हैं। उन क्लर्कों के अंगुलियों की कोई भी जुम्बिश व्यर्थ नही होती थी। पहली बार यह नजारा देखकर मैं ठिठक गई थी- कि मैं भी यह तरीका सीखूँ। लेकिन वह ख्याल छोडकर मैं दूसरी बातों में लग गई तो वह बात पीछे छूट गई।

ट्रेझरी इन्स्पेक्शन के दिन ही तहसिल के प्रत्येक गांव से पुलिस पाटील को बुलाकर उन्हे सम्मान चिह्न स्वरूप पान की गिलौरी प्रांतसाहब के हाथों दी जाती थी। थालियों में चांदी के बर्ख और लाँग से सजी पान की गिलौरियाँ रखी जाती थीं। तहसिलदार एक एक पुलिस पाटील को बुलाकर उनका परिचय करवाते। पुलिस पाटील प्रायः गांव का प्रतिष्ठित व्यक्ति होता था और उसकी नियुक्ति पूर्णतः प्रांत अधिकारी के मत से होती थी। गांव में कोई भी दुर्घटना या गुनाह होने पर उसकी सूचना पुलिस पाटील ही पुलिस में देता था। यह आवश्यक माना जाता कि वह व्यक्ति गांव में प्रतिष्ठित हो, साथ ही उसकी सूचनाएँ विश्वसनीय हों।

लेकिन आज पुलिस पाटी एक नौकरी बनकर रह गया है। सम्मान चिन्ह की गिलौरी देने की प्रथा और उसकी आत्मीयता समाप्त हो गई है। लेकिन एक नया पहलू भी उभर रहा है। चूँकि अब यह एक सरकारी नौकरी बन गई है, अतः इसमें अनुसूचित जातियों एवं महिलाओं के लिए भी आरक्षण का प्रावधान हो गया है। महाराष्ट्र की महिला पुलिस पाटील, महिला ग्राम पंचायत सदस्य या महिला सरपंच लेखन के लिए एक अच्छा विषय है जिस पर आज तक प्रथितयश साहित्यकारों की नजर नही पडी है। उन पर कोई कथा या उपन्यास नही लिखा गया है। प्रांतसाहबी के दौरान पुणे, खंडाला, पुणे-भोर आदि राष्ट्रीय महामार्गों पर यह बहुत खलता था कि कहीं कोई लेडिज टॉयलेट नही होते थे। कई वर्षों बाद इंग्लैंड गई तो देखा कि वहाँ महामार्गों की रचा का प्रोजेक्ट बनता है, उसी समय प्रोजेक्ट के एक अंश के रूप में तय होता है कि कहाँ कितने फर्स्ट एड सेंटर्स, कितने दवाखाने, कितने टॉयलेट्स, कितने स्नॅकबार, कितने टेलीफोन बूथ लगेंगे और जब तक वे न लग जाए, रास्ते के उस सेक्शन का निर्माण अधूरा माना जाता है। हमारे देश में पिछले दस वर्षों से नॅशनल हाइवे अथॉरिटी बनी है लेकिन आज भी उनकी कस्टमर सर्विस पॉलिसी नही बनी और न यह उनकी किसी पॉलिसी में लिखा गया कि ये सारी सुविधाएँ किसी भी रास्ते के प्रोजेक्ट का अभिन्न अंग होंगे।

यदि हमें महिला सक्षमीकरण की बात करनी है, तो महिलाओं में घुमक्कडी को प्रोत्साहन देना होगा, इसके लिये महामार्गों पर लेडिज टॉयलेट बनाना अनिवार्य होना चाहिये।

प्रांतसाहेब का आधा समय कोर्ट वर्क करने में निकल जाता है क्योंकि कई कानूनों के अंतर्गत केसों की सुनवाई का काम प्रांत अधिकारी का है। कई सुनवाईयाँ तहसीलदार के अधिकार कक्ष में पडती हैं- वे भी अपील के लिये प्रांत अधिकारी के पास आती हैं। इसी से पुराने जमाने के तहसीलदारों के कई अच्छे अच्छे निर्णय पढने का सौभाग्य मिला। कई बार मैं अपील न होने पर उन्हे निकाल कर पढती थी। सुंदर अक्षर लिये उनकी कलम जो एक बार उठती तो बिना किसी कांट छांट के पन्ने के पन्ने भर कर लम्बी लम्बी जजमेंट लिख जाती। उनमें कानून की बारीक पेचिदगियों का विवेचन होता था, खास कर जमीन और लगान से जुडे कानूनों का। इसी पढाई के कारण मुझे कई बारीकियाँ समझ आई और मैं भी विवेचना पूर्वक जजमेंट लिखने लगी। मेरे कई निर्णय अपील होते होते हाईकोर्ट तक भी पहुँचे हैं और वहाँ भी मेरे निर्णयों पर सहमति जताई गई- ऐसे कई निर्णय मेरी याद में बसे हुए हैं और संतोष देते हैं। तहसीलदार, प्रांतअधिकारी, कलेक्टर और रेवेन्यू कमिश्नर को मिलाकर करीब दो सौ कानूनों के अंतर्गत कोर्ट के रूप में काम करना पडता है। कानूनी किताबें लिखने वालों का, खासकर जजमेंट कम्पाईल करने वाली संस्थाओं का ध्यान अभी तक इनकी ओर क्यों नही गया यह मेरी समझ से बाहर है।

नया ज्ञानोदय ...... में प्रकाशित